आम अच्छा संगठन

विषय-सूची

प्रस्तावना

इमानुएल 17 साल का एक सीधा-सादा लड़का है।

एक दिन, वह अपनी रोज़ाना की स्कूल बस से घर जा रहा था। जब ड्राइवर, जो उस रास्ते पर नया था, ने पूछा: ‘तुम असल में क्या पढ़ रहे हो?’ ‘मैं इंडस्ट्रियल मैनेजमेंट में वोकेशनल कोर्स कर रहा हूँ।’ ‘और इसकी फीस कितनी है?’ ड्राइवर ने अपने 16 साल के बेटे के बारे में सोचते हुए पूछा। इमानुएल ने जवाब दिया: ‘कुछ नहीं, कंपनी इसके पैसे देती है।’ ‘और तुम वहाँ क्या करते हो?’ ड्राइवर अब भी अपने बेटे के बारे में जानने को उत्सुक था। इमानुएल ने जवाब दिया: ‘हम बैग बनाने के लिए मशीनों का इस्तेमाल करना सीखते हैं।’ ‘यह तो बहुत बढ़िया होगा!’ ड्राइवर ने कहा। इमानुएल अपने काम के स्केल का अंदाज़ा देते हुए कहता है: ‘पिछला ऑर्डर छह हज़ार बैग का था।’ ड्राइवर हैरान होकर पूछता है: ‘और तुम्हें इसमें कितना समय लगता है? कितने लोग?’ इमैनुएल ने सीधे-सीधे कहा: ‘हम पाँच लोग हैं और हमने यह छह दिनों में किया।’ ‘अविश्वसनीय,’ ड्राइवर ने कहा। वह बिना झिझके एक आखिरी सवाल पूछता है: ‘हर बैग की कीमत कितनी है? मेरी आंटी उन्हें 17 में बेचती हैं, लेकिन दुकान में वे 30 के हैं।’ अब ड्राइवर को हिसाब लगाना है। वह ज़ीरो जोड़ता है–छह हज़ार बैग में से तीन, और तीस में से एक और वह हैरान रह जाता है। वह थोड़ी देर और सोचता है और जब वह लगभग आंकड़ा जोड़ता है, तो उसे पता चलता है कि यह लगभग दो लाख आता है। और वह और भी हैरान हो जाता है जब उसे याद आता है कि वे पाँच थे, और हर एक के लिए लगभग चालीस हज़ार बचते हैं, और ऊपर से, सिर्फ़ एक हफ़्ते के काम में। उसने गहरी सांस ली, खर्चों के लिए पचास परसेंट काट लिया, और आखिर में, सोचा कि वह कितना कमाता है, इमैनुएल कितना कमाएगा, और उसे अपने लिए, और सीधे-सादे, मेहनती इमैनुएल के लिए बुरा लगा।

यह काम पावर के बैलेंस को आम लोगों की भलाई के पक्ष में करने के लिए ज़रूरी है। इसी समय यह साफ़ होता जा रहा है कि कैसे पावर का जमावड़ा हम पर भूख, जंग, झगड़ा और तानाशाही कंट्रोल थोपता है। कॉमन गुड ऑर्डर सबके लिए है, लेकिन खासकर नौजवानों और आने वाले नौजवानों के लिए। आप ही वो लोग हैं जिन्हें कुछ लोगों के चुने हुए फैसलों और उनके खास अधिकारों के नतीजों के साथ जीना होगा। हम किस तरह के इंसान बनना चाहते हैं? एक ऐसा समाज जो गुलामों और बादशाहों के बीच बंटा हो, या ऐसा समाज जिसमें हम सबके लिए इज्ज़तदार ज़िंदगी पक्की करने के लिए मिलकर काम करें?

1. कुछ लोगों के हाथ में पावर

असल में दुनिया पर कौन राज करता है? लोग, या कुछ माइनॉरिटी जिनके पास पैसा, असर और फैसले लेने की पावर का एक जगह जमा है? यह सिर्फ़ एक पॉलिटिकल मामला नहीं है, बल्कि हमारे समय की ज़्यादातर गैर-बराबरी की स्ट्रक्चरल बुनियाद है। ऐसे समाज में जहाँ कुछ लोग फैसले लेते हैं और बहुत से लोग सिर्फ़ नतीजे भुगतते हैं, भविष्य एक कलेक्टिव कोशिश नहीं रह जाता और प्राइवेट फायदे से तय होने लगता है।

अभी, इकोनॉमिक, पॉलिटिकल और इन्फॉर्मेशनल पावर का एक जगह जमा होना कुछ खास ग्रुप्स के अंदर बढ़ रहा है: बड़ी कॉर्पोरेशन्स, फाइनेंशियल एलीट, मीडिया ग्रुप्स और बंद इंस्टीट्यूशनल सर्कल्स। यह एक जगह जमा होना लोगों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर सीधा असर डालता है, खाने की कीमतों से लेकर घर, काम और पढ़ाई तक पहुँच तक। जब कुछ लोग रिसोर्स और फैसलों को कंट्रोल करते हैं, तो ज़्यादातर लोग ऐसे नियमों के तहत जीते हैं जिन्हें बनाने में उन्होंने मदद नहीं की।

अभी का मॉडल एक बहुत ही गलत और नैतिक रूप से टिकाऊ नहीं लॉजिक दिखाता है। कैपिटल का जमाव सिर्फ़ इकोनॉमिक दायरे तक ही सीमित नहीं है: यह पॉलिटिकल असर में बदल जाता है, इंस्टीट्यूशन पर कब्ज़ा कर लेता है और कानूनों, पब्लिक पॉलिसी और राज्य की प्रायोरिटी को इस तरह से बनाता है कि उसी स्ट्रक्चर की रक्षा हो जिसने इसे बनाया है। इस तरह, पैसा पावर पैदा करता है, पावर नॉर्म्स बनाती है, और नॉर्म्स उन्हीं ग्रुप्स के हाथों में पैसा बनाए रखते हैं, जिससे रिप्रोडक्शन का एक बंद साइकिल बनता है। इस सिस्टम की कीमत ज़्यादातर आबादी रोज़ाना चुकाती है, कम सैलरी, हेल्थकेयर तक खतरनाक एक्सेस, लिमिटेड एजुकेशन, फ़ूड इनसिक्योरिटी और सोशल तरक्की के लिए असली उम्मीदों की कमी के रूप में। जबकि कुछ लोग लग्ज़री, पैसा और फ़ैसले लेने की पावर जमा करते हैं, लाखों लोग असमानता की क्रूर सच्चाई का सामना करते हैं: भूख, थकावट, शारीरिक और मानसिक बीमारी, और, सबसे गंभीर मामलों में, स्ट्रक्चरल एक्सक्लूज़न के कारण सोशल और बायोलॉजिकल मौत। फ़ैसले लेने की पावर के असली रीडिस्ट्रिब्यूशन पर आधारित स्ट्रक्चरल बदलाव ज़रूरी है। यह बदलाव प्रैक्टिकल, धीरे-धीरे और इंस्टीट्यूशनल रूप से ऑर्गनाइज़्ड तरीके से होना चाहिए। पहले कदम में पॉलिटिकल फाइनेंसिंग, पैसे के जमाव और लेजिस्लेटिव प्रोसेस पर इकोनॉमिक असर के बारे में पब्लिक ट्रांसपेरेंसी

सुनिश्चित करने के लिए दूरगामी सिस्टम बनाना शामिल है। इसके बाद, सोच-समझकर बनाई गई कम्युनिटी काउंसिल, लोकल असेंबली और बाइंडिंग पावर वाले पार्टिसिपेटरी बजटिंग स्ट्रक्चर को मज़बूत करना ज़रूरी है। फिर, एक प्रोग्रेसिव और रीडिस्ट्रिब्यूटिव टैक्स मॉडल लागू किया जाना चाहिए, जो पैसे के बहुत ज़्यादा जमाव को कम कर सके और एजुकेशन, हेल्थ, इंफ्रास्ट्रक्चर में सीधे इन्वेस्टमेंट और पुराने समय से पिछड़े इलाकों में मौके बनाने के लिए फाइनेंसिंग कर सके। बदलाव की प्रक्रिया में, शॉर्ट टर्म में, इंस्टीट्यूशनल सुधार और फैसले लेने में ट्रांसपेरेंसी शामिल होनी चाहिए। मीडियम टर्म में, फिस्कल पॉलिसी और लोकल कम्युनिटी को मज़बूत करके इकोनॉमिक रीडिस्ट्रिब्यूशन। लॉन्ग टर्म में, गवर्नेंस के एक डीसेंट्रलाइज़्ड मॉडल को मज़बूत करना, जिसमें पावर एक प्राइवेट एसेट न रहकर कलेक्टिव के एक टूल के तौर पर काम करे।

यह साफ़ है कि उन ग्रुप्स की तरफ़ से विरोध होगा जिन्हें अभी मौजूदा स्ट्रक्चर से फ़ायदा हो रहा है। पावर के किसी भी रीडिस्ट्रिब्यूशन का उन लोगों की तरफ़ से विरोध होता है जिन्हें इम्बैलेंस के जारी रहने से फ़ायदा होता है। फिर भी, कोई भी समाज सच्ची स्टेबिलिटी, इंसाफ़ या लंबे समय तक चलने वाले भविष्य की उम्मीद नहीं कर सकता, जब तक कि कुछ लोगों के प्रिविलेज को बनाए रखने के लिए कई लोगों की जान कुर्बान होती रहे। जिन ग्रुप्स को अभी मौजूदा स्ट्रक्चर से फ़ायदा हो रहा है, उनका विरोध सिर्फ़ साफ़ तौर पर नहीं है। जो सेक्टर्स पैसा, इंस्टीट्यूशनल असर और रेगुलेटरी पावर को एक जगह जमा करते हैं, वे एक साथ कई स्ट्रेटेजी अपनाते हैं: पब्लिक डिबेट को हाईजैक करना, पावर के रीडिस्ट्रिब्यूशन को गलत साबित करने वाले नैरेटिव को फ़ंड करना, पॉलिटिकल रिप्रेजेंटेटिव पर दबाव डालना, कोर्ट में प्रपोज़्ड रिफ़ॉर्म को चुनकर चैलेंज करना, और बदलाव का सोशल डर पैदा करने के लिए मीडिया का इस्तेमाल करना। मौजूदा सिस्टम पावर के रीडिस्ट्रिब्यूशन के किसी भी प्रपोज़ल को इकोनॉमिक स्टेबिलिटी, रोज़गार, इंस्टीट्यूशनल ऑर्डर या पर्सनल फ़्रीडम के लिए खतरे के तौर पर पेश करने की कोशिश करता है, जिससे प्रिविलेज नॉर्मल होने का दिखावा बन जाता है। विरोध शायद ही कभी खुद के फ़ायदे के बचाव के तौर पर खुद को ज़ाहिर करता है, यह खुद को टेक्निकल बातचीत, फ़ाइनेंशियल समझदारी, फ़ॉर्मल लीगैलिटी या नेशनल इंटरेस्ट की तथाकथित सुरक्षा के तौर पर छिपाता है। इसलिए, बदलाव सिर्फ़ छोटी-मोटी टूट-फूट या किसी एक बड़ी पॉलिटिकल घटना पर निर्भर नहीं हो सकता। इसे छोटे, लगातार और ऐसे कदमों के एजेंडा से बनाना होगा जिन्हें बदला न जा सके, जो धीरे-धीरे फ़ैसले लेने वाले क्षेत्रों में अपनी जगह बना सकें। सबसे पहले, हमें आसानी से मिलने वाली पॉलिटिकल एजुकेशन, साफ़ पब्लिक बातचीत के विकास और बड़े स्ट्रक्चरल मुद्दों और लोगों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी: सैलरी, घर, हेल्थकेयर, ट्रांसपोर्ट और एजुकेशन के बीच सीधे लिंक के

ज़रिए समाज के प्रति जागरूक ज़्यादातर लोगों को बनाना होगा। जब ज़्यादातर लोग यह मान लेंगे कि पावर के जमाव का उनकी ज़िंदगी पर असल असर पड़ता है, तो एजेंडा सिर्फ़ थ्योरी नहीं रहेगा और एक जायज़ लोकप्रिय मांग बन जाएगा। दूसरा स्टेज मौजूदा संस्थाओं के अंदर होना चाहिए: लोकल काउंसिल, कम्युनिटी एसोसिएशन, ट्रेड यूनियन, यूनिवर्सिटी, टाउन काउंसिल, पब्लिक फ़ोरम और पार्टिसिपेटरी बजटिंग सिस्टम का धीरे-धीरे कब्ज़ा। फ़ैसले लेने वाले सिस्टम में एंट्री ज़मीनी स्तर से शुरू होनी चाहिए, जहाँ लोगों की लेजिटिमेसी सबसे ज़्यादा दिखती है और जहाँ एलीट क्लास के विरोध को बेअसर करना सबसे मुश्किल होता है। बजट में ट्रांसपेरेंसी, सोशल निगरानी, रिसोर्स का इलाके के हिसाब से दोबारा बंटवारा, और पब्लिक सर्विस का विस्तार जैसी छोटी लोकल जीतें ठोस मिसाल बनती हैं जो सबका भरोसा बनाती हैं और नामुमकिन होने की सोच को कमज़ोर करती हैं।

इसके बाद, सोशल मेजॉरिटी को इंस्टीट्यूशनल मेजॉरिटी में बदलना ज़रूरी हो जाता है। इसका मतलब है कि पॉपुलर सपोर्ट को ऑर्गनाइज़्ड रिप्रेजेंटेशन में बदलना, जिसमें फेज़्ड लेजिस्लेटिव एजेंडा, साफ़ मकसद और सुधारों के लिए एक लगातार टाइमटेबल हो। हर कदम आगे बढ़ने से पिछले सिस्टम में वापस जाने की गुंजाइश कम होनी चाहिए: ऐसे नियम जो पूरी पब्लिक ट्रांसपेरेंसी पक्का करें, पॉलिटिकल प्रोसेस पर इकोनॉमिक असर को खत्म करें, लोकल फैसले लेने वाली बॉडी को मज़बूत करें, और प्रोग्रेसिव फिस्कल रीडिस्ट्रिब्यूशन करें। स्ट्रेटेजिक लॉजिक यह है कि बदलाव को कुल मिलाकर किया जाए, ताकि हर अगला कदम पिछले कदम के नतीजे पर आधारित हो। एक खास अधिकार वाले स्ट्रक्चर में जो अपने आप नहीं झुकता, उसका सामना मेजॉरिटी की ऑर्गनाइज़्ड ताकत से करना ज़रूरी है, इंस्टीट्यूशन पर समझदारी से कब्ज़ा करके और सुधारों को जारी रखकर। ऐतिहासिक बदलाव सिर्फ़ नैतिक ज़रूरत से नहीं, बल्कि कदम दर कदम आगे बढ़ने की काबिलियत से आता है, जब तक कि पावर का रीडिस्ट्रिब्यूशन सिर्फ़ एक प्रपोज़ल न रह जाए और एक मज़बूत सच्चाई न बन जाए।

इस बदलाव के फ़ायदे बहुत बड़े हो सकते हैं। सामाजिक भागीदारी को बढ़ाकर, फ़ैसले लोगों की असली ज़रूरतों को दिखाएंगे, और सेंट्रलाइज़ेशन से होने वाली गड़बड़ियों को ठीक करेंगे। असमानता कम होगी, इंस्टीट्यूशनल भरोसा वापस आ सकता है, और सोशल इनोवेशन की क्षमता बढ़ेगी, क्योंकि ज़्यादा लोग शेयर्ड सॉल्यूशन में एक्टिव रूप से योगदान देना शुरू कर देंगे। कुछ लोगों के हाथों में पावर पर बहस खुद भविष्य की लेजिटिमेसी पर बहस है। पावर का

रीडिस्ट्रिब्यूशन अब सिर्फ़ एक थ्योरेटिकल संभावना नहीं है: यह एक ऐतिहासिक ज़रूरत बन गई है, जो सामाजिक बदलाव के किसी भी गंभीर प्रोजेक्ट के लिए ज़रूरी और ज़रूरी है।

2. बहिष्कार का सोशल स्ट्रक्चर

क्यों, मॉडर्न और मेरिटोक्रेटिक होने का दावा करने वाले समाजों में भी, इतने सारे लोग ऐसी किस्मत के साथ पैदा होते हैं जो लगभग पहले से तय होती है? यह एक ऐसा स्ट्रक्चर है जो चुप है फिर भी गहराई से जमा हुआ है, जिसमें पावर, प्रतिष्ठा और मौकों तक पहुंच के पद टॉप पर ही केंद्रित रहते हैं, जबकि नीचे का तबका इसके फायदों का सही हिस्सा लिए बिना सिस्टम को बनाए रखता है। एक उदाहरण से ज़्यादा, सोशल पिरामिड सामूहिक जीवन में रिसोर्स, प्रभाव और पहचान के असमान बंटवारे को दिखाता है।

आज के संदर्भ में, ये स्ट्रक्चर इनकम के बंटवारे, शिक्षा की असमान क्वालिटी, हेल्थकेयर, घर और प्रोफेशनल नेटवर्क तक पहुंच में खुद को दिखाते हैं। खास अधिकार वाले तबके के परिवार न केवल पैसा बल्कि कल्चरल कैपिटल, कनेक्शन और सोशल लेजिटिमेसी भी आगे बढ़ाते हैं, जबकि हाशिए पर पड़े ग्रुप बचपन से ही स्ट्रक्चरल रुकावटों का सामना करते हैं। इस मुद्दे का सोशल मोबिलिटी पर सीधा असर पड़ता है: जब किसी की मूल स्थिति का असर व्यक्तिगत कोशिश से ज़्यादा होता है, तो समान मौकों का वादा एक नाजुक और भ्रामक बात बन जाता है। मौजूदा मॉडल पूरी तरह से खुद को बनाए रखने वाला और ऐतिहासिक रूप से अलग-थलग करने वाला है। कुछ खास ग्रुप्स के अंदर मटीरियल, कल्चरल और सिंबॉलिक रिसोर्स का जमा होना न सिर्फ आज गैर-बराबरी पैदा करता है, बल्कि यह पक्का करता है कि यह पीढ़ियों तक जारी रहे। दौलत, अच्छी एजुकेशन, असर के नेटवर्क, पावर के पदों तक पहुंच और सोशल लेजिटिमेसी विरासत के तौर पर आगे बढ़ती है, जिससे ऐसे स्ट्रक्चर मजबूत होते हैं जिनमें ऊपर वाले अपनी पोजीशन बनाए रखते हैं जबकि नीचे वाले लगभग ऐसी मुश्किलों का सामना करते हैं जिन्हें पार नहीं किया जा सकता। इसका नतीजा एक बंटा हुआ समाज होता है, जिसमें ऊपर की ओर बढ़ना नियम नहीं रह जाता और एक्सेप्शन बन जाता है। इससे भी ज़्यादा गंभीर बात यह है कि यह स्ट्रक्चर गैर-बराबरी को नेचुरल बना देता है, जैसे कि कुछ लोगों का लीडरशिप के लिए पैदा होना और दूसरों का गायब होना मंज़ूर हो।

स्ट्रक्चरल हिंसा लोगों की ज़िंदगी में साफ तौर पर दिखती है। यह उस बच्चे में साफ दिखता है जो बिना उसी एजुकेशन, बिना सही न्यूट्रिशन और उस सपोर्ट नेटवर्क के बिना ज़िंदगी शुरू

करता है जो खास क्लास के बच्चों को आगे बढ़ाता है। यह उस नौजवान में साफ़ दिखता है, जो अपनी कोशिशों के बावजूद, अपने लिए दरवाज़े बंद पाता है क्योंकि उसके पास कोई बड़ा सरनेम, सोशल कैपिटल या सही ग्रुप की मेंबरशिप नहीं होती। यह उस वर्कर में भी दिखता है जो अपनी काबिलियत को काबिलियत की कमी से नहीं, बल्कि उस सोशल स्ट्रक्चर से सीमित देखता है जो उसे हमेशा सबसे नीचे रखता है। इस गैर-बराबरी की कीमत सबसे ज़्यादा उन लोगों को चुकानी पड़ती है जो आस-पास के इलाकों में रहते हैं, पुराने समय से हाशिए पर पड़े ग्रुप हैं और वे पीढ़ियाँ जो अलग-अलग मौकों के बोझ तले बड़ी हो रही हैं। इस लॉजिक से बहुत ज़्यादा तकलीफ़ होती है: पुरानी गरीबी, प्रोफ़ेशनल तौर पर अलग-थलग रहना, साइकोलॉजिकल परेशानी और मौत, जो इज्ज़त की कम से कम शर्तों तक पहुँच न होने की वजह से होती है। इस मॉडल से फ़ायदा उठाने वाले वे लोग हैं जो पिरामिड के टॉप पर हैं और एक ऐसे सिस्टम के मेंटेनेंस से फ़ायदा उठाते हैं जो विरासत में मिले खास अधिकार को सोशल लेजिटिमेसी में बदल देता है।

इस कड़वी सच्चाई का सामना करते हुए, सोशल स्ट्रक्चर को बराबर करने और मौकों को असल में बढ़ाने पर आधारित एक नए नज़रिए की ज़रूरत है। पहला कदम यह पक्का करना है कि बचपन से ही अच्छी क्वालिटी की एजुकेशन तक असरदार तरीके से सबकी पहुँच हो, क्योंकि यहीं से गैर-बराबरी की जड़ें जमने लगती हैं। इसके बाद, हेल्थकेयर, घर, खाना और कनेक्टिविटी तक सबकी पहुँच पक्का करने के लिए मज़बूत पॉलिसी लागू करनी होंगी, ताकि सोशल बैकग्राउंड किसी की ज़िंदगी की शुरुआत तय न करे। खास अधिकार पाने के खानदानी तरीकों पर भी रोक लगाना ज़रूरी है, जैसे बहुत ज़्यादा पैसा इकट्ठा करना, इंस्टीट्यूशनल नेटवर्क की मोनोपॉली और इज़्ज़तदार पदों पर पहुँचने में इनफॉर्मल रुकावटें।

प्रपोज़ल है कि पिरामिड के लॉजिक को नेटवर्क के लॉजिक से बदला जाए। प्रैक्टिकल तौर पर, इसका मतलब है एक ऐसा समाज बनाना जिसमें असर, ज्ञान और मौके कम्युनिटी, इंस्टीट्यूशन और लोगों के बीच हॉरिजॉन्टली सर्कुलेट हों। कम्युनिटी स्पेस, लोकल कोऑपरेटिव, ओपन यूनिवर्सिटी और पब्लिक वोकेशनल ट्रेनिंग सिस्टम को सोशल पहचान और सिंबॉलिक पावर के रीडिस्ट्रिब्यूशन के लिए इंस्ट्रूमेंट के तौर पर काम करना चाहिए। आइडिया टैलेंट, काम या पसंद में अलग-अलग अंतरों को नकारना नहीं है, बल्कि इन अंतरों को लोगों के ग्रुप के बीच परमानेंट रुकावटों में बदलने से रोकना है।

इस बदलाव का ज़रूर विरोध होगा, और यह विरोध दूसरे फील्ड की तुलना में और भी ज़्यादा सोफिस्टिकेटेड होता है, क्योंकि प्रिविलेज के स्ट्रक्चर न सिर्फ़ मटेरियल रिसोर्स से बल्कि

लेजिटिमाइज़ेशन के सिंबॉलिक मैकेनिज्म से भी बने रहते हैं। मॉडर्न जातियां शायद ही कभी खुद को ऐसे दिखाती हैं: वे मेरिट, ट्रेडिशन, एक्सीलेंस, कल्चरल हेरिटेज और तथाकथित इंस्टीट्यूशनल न्यूट्रैलिटी की बातों के पीछे छिप जाती हैं। यह सिस्टम असर के उन्हीं नेटवर्क को फिर से बनाकर, क्वालिटी एजुकेशन तक असमान पहुंच, पीढ़ियों के बीच दौलत का कंसंट्रेशन, और प्रोफेशनल, पॉलिटिकल और एकेडमिक प्रेस्टीज की जगहों में एंट्री के लिए इनफॉर्मल रुकावटों को बनाए रखकर पिरामिड मॉडल को बनाए रखना चाहता है। विरोध असमानता को नॉर्मल बनाने से पैदा होता है, जिससे ऐसा लगता है कि हर ग्रुप की जगह सिर्फ़ उसकी अपनी कोशिश का नतीजा है, जबकि असल में यह काफी हद तक किसी के शुरुआती पॉइंट से तय होता है।

बदलाव सिर्फ़ सोशल जस्टिस के बारे में नैतिक तर्कों पर निर्भर नहीं हो सकता: इसे ठोस, छोटे और स्थिर कदमों से आगे बढ़ना चाहिए, जो पिरामिड के अपने आप बनने को धीरे-धीरे कमज़ोर कर सकें। पहला कदम असमानता को उसके मूल से ही खत्म करना है, बचपन की देखभाल, अच्छी क्वालिटी की बेसिक शिक्षा, स्कूल में पूरा खाना, कनेक्टिविटी तक पहुँच, और ऐसी रिटेंशन पॉलिसी के ज़रिए जो असमानता को जीवन के शुरुआती सालों से ही जड़ जमाने से रोकती हैं। यहीं पर समाज के ज़्यादातर लोग ठोस तौर पर यह समझने लगते हैं कि मौके की बराबरी कोई सोच नहीं है, बल्कि आज़ादी के लिए एक प्रैक्टिकल शर्त है।

दूसरे स्टेज में फ़ैसले लेने वाली बॉडी और जाने-माने इंस्टीट्यूशन में धीरे-धीरे अपनी जगह बनाने पर ध्यान देना चाहिए। इसका मतलब है यूनिवर्सिटी, पब्लिक सर्विस करियर, रिसर्च सेंटर, इकॉनमी के स्ट्रेटेजिक सेक्टर और कम्युनिटी लीडरशिप रोल में सोशल तरक्की के मौके बढ़ाना। इन जगहों पर आने वाला हर नया ग्रुप पिरामिड के खानदानी लॉजिक को कमज़ोर करता है और बदलाव की लेजिटिमेसी को मज़बूत करता है। ग्रांट, सोशल कोटा, पब्लिक मेंटरिंग प्रोग्राम, डीसेंट्रलाइज़्ड प्रोफेशनल एक्सेस और लोकल टेक्निकल ट्रेनिंग जैसे इंस्टीट्यूशनल फायदे मॉडर्न जातियों के दोबारा बनने में पक्की दरारों का काम करते हैं।

फिर इन दरारों को स्ट्रक्चरल बदलाव में बदलना ज़रूरी है। ज़्यादातर लोगों को सोशल मोबिलिटी पॉलिसी बनाने, टैक्स सुधारों पर ज़ोर देने, बहुत ज़्यादा दौलत इकट्ठा होने से रोकने और उन तरीकों में शामिल होना चाहिए जो बिना रोक-टोक के पीढ़ी-दर-पीढ़ी खास अधिकारों के ट्रांसफर को रोकते हैं। हमें यह पक्का करना होगा कि हर तरक्की जमा हो और सामाजिक रूप से दिखे: जैसे-जैसे ज़्यादा लोग आगे बढ़ेंगे, पढ़ाई करेंगे, फैसले लेने वाले पदों पर बैठेंगे और अपने

समुदायों को बदलेंगे, यह बात कि टॉप पर स्वाभाविक रूप से कुछ ही लोग होते हैं, कमज़ोर पड़ने लगेगी।

एक समाज जो मॉडर्न जातियों के बने रहने को आम बात मान लेता है, वह न सिर्फ़ अपने अंदरूनी न्याय को कमज़ोर करता है, बल्कि इनोवेशन, एकता और भविष्य की अपनी क्षमता को भी कमज़ोर करता है। जब तक किसी का जन्म उसकी किस्मत तय करता रहेगा, आज़ादी का वादा अधूरा रहेगा। असली बदलाव तब शुरू होता है जब ज़्यादातर लोग सिर्फ़ पिरामिड को बनाए रखना बंद कर देते हैं और धीरे-धीरे अपने आर्किटेक्चर को फिर से डिज़ाइन करना शुरू कर देते हैं।

सोशल लेवल की सख्ती कम करने से, इकोनॉमिक मोबिलिटी बढ़ती है, कलेक्टिव इनोवेशन मज़बूत होता है, और समाज में अपनेपन की भावना बढ़ती है। जो लोग पहले अपने बैकग्राउंड की वजह से सीमित थे, वे इकोनॉमिक, साइंटिफिक और कल्चरल ज़िंदगी में ज़्यादा एक्टिव रूप से योगदान देने लगते हैं, जिससे ज़्यादा बैलेंस्ड और सस्टेनेबल ग्रोथ होती है। इसके अलावा, सोशल डिवाइड कम करने से टेंशन कम होता है, कम्युनिटी में एकता मज़बूत होती है और इंस्टीट्यूशन्स की लेजिटिमेसी बढ़ती है। मॉडर्न जातियों और पिरामिड मॉडल पर चर्चा करना, इंसानी साथ रहने के आर्किटेक्चर पर चर्चा करना है। कोई भी समाज तब तक टिकाऊ स्टेबिलिटी और जस्टिस की उम्मीद नहीं कर सकता जब तक किसी के जन्म के समय की पोजीशन उसके भविष्य का स्कोप तय करती रहे। इन स्ट्रक्चर्स पर काबू पाना सिर्फ़ एक मोरल आइडियल नहीं है, बल्कि एक ऐसा सोशल मॉडल बनाने के लिए एक हिस्टोरिकल ज़रूरी है जो सच में डायनामिक, लेजिटिमेट और कलेक्टिव डेवलपमेंट के लिए तैयार हो।

3. कैपिटलिस्ट इच्छाएं और ग्लोबल संकट

इंसानी इच्छाएं, जब इकोनॉमिक और पॉलिटिकल लॉजिक में बदल जाती हैं, तो किस हद तक धरती को अस्थिर कर सकती हैं? यह एक अजीब बात है: प्रॉफिट, कंजम्पशन, पावर और एक्सपेंशन की लगातार चाहत आज के बड़े संकटों के पीछे मुख्य वजह बन गई है। जब पर्सनल और कॉर्पोरेट इच्छाओं को कोई एथिकल या स्ट्रक्चरल लिमिट नहीं मिलती, तो उनका असर सीमाओं को पार कर जाता है और ग्लोबल लेवल पर सोशल, एनवायर्नमेंटल और इकोनॉमिक बैलेंस को कमजोर करना शुरू कर देता है।

यह डायनामिक बार-बार आने वाले फाइनेंशियल संकटों, नेचुरल रिसोर्स के ज़्यादा इस्तेमाल, बढ़ती असमानता और जियोपॉलिटिकल टेंशन के रूप में दिखता है। लगातार ग्रोथ की चाहत, और सफलता के पैमाने के तौर पर कंजम्पशन को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने से प्रोडक्शन सिस्टम, इकोसिस्टम और सोशल रिलेशन पर लगातार दबाव पड़ता है। इसका ठोस असर रोज़मर्रा की ज़िंदगी में महसूस होता है: महंगाई, बेरोजगारी, खाने की कमी, आबादी का विस्थापन और एनवायर्नमेंटल गिरावट, बिना किसी कलेक्टिव काउंटरबैलेंस के एक्सपेंशनल इच्छाओं से चलने वाले मॉडल के नतीजे हैं।

समस्या इसके अपने अंदरूनी लॉजिक में है, जो जमा करने, इज्ज़त और दबदबे की इंसानी इच्छाओं को ग्लोबल इकोनॉमी के ऑर्गनाइजिंग प्रिंसिपल में बदल देता है। जिसे शुरू में सिक्योरिटी या पहचान के लिए एक पर्सनल कोशिश समझा जा सकता था, उसे सिस्टम की पूरी ड्राइविंग फोर्स का दर्जा दे दिया गया है। पैसा अब एक ज़रिया नहीं रहा और एक मकसद बन गया है: ग्रोथ अब एक ज़रिया नहीं रहा और एक ज़रूरी चीज़ बन गया है। इस उलटफेर से एक ऐसा स्ट्रक्चर बनता है जो किसी भी नैतिक, सामाजिक या इकोलॉजिकल क्राइटेरिया से ऊपर अनलिमिटेड एक्सपेंशन, लगातार कंजम्पशन और ज़्यादा से ज़्यादा प्रॉफिट कमाने को इनाम देता है। इसका सीधा नतीजा लोगों, रिसोर्स और इंस्टीट्यूशन का बहुत ज़्यादा इस्तेमाल है, जिससे ऐसे संकट पैदा होते हैं जो अकेले नहीं आते बल्कि एक-दूसरे को बढ़ावा देते हैं: आर्थिक मंदी, एनवायरनमेंटल गिरावट, खाने की इनसिक्योरिटी, जियोपॉलिटिकल झगड़े और बड़े पैमाने पर सामाजिक अस्थिरता। इस बीच, इस मॉडल से होने वाला प्रॉफिट बड़ी कॉर्पोरेशन, फाइनेंशियल ग्रुप और ऐसे ग्रुप में इकट्ठा रहता है जिन्हें कंजम्पशन के लगातार बढ़ने और ग्लोबल रिसोर्स के इस्तेमाल से सीधे फायदा होता है।

सिस्टम जितना ज़्यादा अनलिमिटेड ग्रोथ को इनाम देता है, उतनी ही ज़्यादा स्ट्रक्चरल कमज़ोरियाँ पैदा करता है जो ज़रूरी तौर पर आम लोगों पर पड़ती हैं। बिना रोक-टोक के एक्सपेंशन के हर नए साइकिल के साथ, एनवायरनमेंट, वर्कफोर्स और डेमोक्रेटिक इंस्टीट्यूशन पर दबाव बढ़ता है। इसका नतीजा यह है कि दुनिया हमेशा संकट में रहती है, जिसमें कुछ लोगों का ज़्यादा पाने का लालच बहुतों के लिए मैटेरियल इनसिक्योरिटी पैदा करता है। यह अलग-अलग नाकामियों का मामला नहीं है, बल्कि एक ऐसे लॉजिक का मामला है जो लगातार बढ़ने को इनाम देकर अपनी अस्थिरता पैदा करता है।

एक नए तरीके की ज़रूरत है, जो सस्टेनेबल लिमिट और सोशल प्रायोरिटी की एक बुनियादी नई परिभाषा पर आधारित हो। सबसे पहले, हमें उन मेट्रिक्स का रिव्यू करना होगा जो

अभी इकोनॉमिक सफलता को तय करते हैं। पूरी तरह से क्वांटिटेटिव इंडिकेटर्स, जैसे GDP ग्रोथ और बढ़ा हुआ कंजम्प्शन, को सप्लीमेंट किया जाना चाहिए, और धीरे-धीरे उन्हें क्वालिटी ऑफ़ लाइफ, फ़ूड सिक्योरिटी, एनवायरनमेंटल बैलेंस, पब्लिक हेल्थ और असमानताओं को कम करने से जुड़े मेट्रिक्स से बदला जाना चाहिए। इंस्टीट्यूशनल शब्दों में, इसके लिए इंटरनेशनल रेगुलेटरी फ्रेमवर्क बनाने की ज़रूरत है जो शिकारी तरीकों पर रोक लगा सकें, बड़ी कंपनियों पर सोशल और एनवायरनमेंटल ज़िम्मेदारी डाल सकें, और स्ट्रेटेजिक सेक्टर्स के लिए ज़रूरी सस्टेनेबिलिटी टारगेट तय कर सकें।

प्रस्तावित इकोनॉमिक मॉडल में ग्रोथ के लिए ग्रोथ के लॉजिक को बैलेंस और सफिशिएंसी के लॉजिक से बदलना शामिल है। प्रोडक्शन, कंजम्पशन और डेवलपमेंट को सबकी भलाई और ज़िंदगी को जारी रखने के लिए ज़रूरी रिसोर्स के बचाव के अधीन होना चाहिए। इसके लिए सर्कुलर इकॉनमी, सस्टेनेबल प्रोडक्शन, चीज़ों का दोबारा इस्तेमाल, क्लीन एनर्जी और ऐसी पब्लिक पॉलिसी को बढ़ावा देना होगा जो ज़्यादा कंजम्पशन और प्लान्ड ऑब्सोलेसन पर सज़ा दें। कल्चरल लेवल पर, इस बदलाव के लिए सोच में एक बड़ा बदलाव ज़रूरी है: जमा करने पर आधारित सफलता की सोच से हटकर, काफ़ी होने, इज्ज़त और पीढ़ियों की ज़िम्मेदारी के कल्चर की ओर बढ़ना।

यह उम्मीद की जा सकती है कि उन सेक्टर्स से विरोध होगा जो भौतिक जीवन के लगातार विस्तार और असीमित कमोडिटीकरण से सबसे ज़्यादा फ़ायदा उठाते हैं, और यह विरोध आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर दिखाई देता है। बड़े फ़ाइनेंशियल ग्रुप, ट्रांसनेशनल कॉर्पोरेशन, शिकारी एनर्जी सेक्टर और लगातार खपत पर निर्भर मार्केट स्ट्रक्चर सरकारों पर मज़बूत असर, पब्लिक नैरेटिव की फ़ंडिंग और रेगुलेटरी फ्रेमवर्क पर दबाव के ज़रिए मौजूदा लॉजिक को बनाए रखने की कोशिश करते हैं। बार-बार इस्तेमाल होने वाली स्ट्रैटेजी यह है कि बिना रोक-टोक के विकास पर किसी भी रोक को रोज़गार, इनोवेशन, इंटरनेशनल कॉम्पिटिटिवनेस और राष्ट्रीय विकास के लिए खतरे के तौर पर पेश किया जाए। बिना रोक-टोक के मुनाफ़े का बचाव, केंद्रित आर्थिक हितों को सामूहिक ज़रूरत के रूप में बदल देता है।

मौजूदा सिस्टम को इंसानी कीमत को उपभोग करने, जमा करने और विस्तार करने की क्षमता से जोड़ने के लिए डिज़ाइन किया गया था। इसलिए, बदलाव के लिए न केवल आर्थिक सुधारों की ज़रूरत है, बल्कि उन क्षेत्रों में धीरे-धीरे बदलाव की भी ज़रूरत है जो सामूहिक सोच को आकार देते हैं: स्कूल, यूनिवर्सिटी, मीडिया, शहरी नीतियां और पब्लिक डेवलपमेंट एजेंडा।

पहला कदम अनलिमिटेड कंजम्पशन और ठोस मटेरियल संकटों के बीच सीधे लिंक के बारे में सोशल अवेयरनेस बनाना होना चाहिए: महंगाई, एनवायरनमेंटल कोलैप्स, साइक्लिकल अनएम्प्लॉयमेंट, फूड इनसिक्योरिटी और एक्सट्रीम वेदर इवेंट्स। जब ज़्यादातर लोगों को एहसास होगा कि ग्लोबल संकट एक्सीडेंट नहीं हैं, बल्कि एक अनकंट्रोल्ड, एक्सपेंसिव मॉडल के प्रेडिक्टेबल नतीजे हैं, तो बदलाव के लिए पॉपुलर सपोर्ट का रास्ता साफ हो जाएगा।

दूसरा स्टेज एनर्जी, नेचुरल रिसोर्स, फाइनेंशियल सिस्टम और मेजर प्रोडक्शन चेन जैसे सबसे ज़्यादा सिस्टमिक इम्पैक्ट वाले सेक्टर्स पर प्रोग्रेसिव रेगुलेशन लागू करना है। मैंडेटरी सस्टेनेबिलिटी टारगेट, एनवायरनमेंटल एक्सटर्नलिटीज़ पर टैक्स, प्रीडेटरी स्पेक्युलेशन पर बैन, सर्कुलर इकॉनमी के लिए इंसेंटिव और क्लीन एनर्जी के लिए फंडिंग ऐसे ठोस उपाय हैं जो धीरे-धीरे मौजूदा मॉडल की बिना लिमिट के खुद को रिप्रोड्यूस करने की एबिलिटी को कम करते हैं।

पब्लिक प्रेशर को लेजिस्लेशन, इंटरनेशनल एग्रीमेंट्स, डिलिबरेटिव काउंसिल्स और इकोनॉमिक और एनवायरनमेंटल मॉनिटरिंग के लिए परमानेंट स्ट्रक्चर्स में बदलना होगा। हर रिफॉर्म को एक्सट्रा के लॉजिक पर लौटने की किसी भी पॉसिबिलिटी को खत्म करना चाहिए: डिस्ट्रक्टिव प्रॉफिट के लिए कम टॉलरेंस, और रिसोर्स, प्रोडक्शन और कंजम्पशन के लिए ज़्यादा कलेक्टिव रिस्पॉन्सिबिलिटी। हमें एक्सट्रा की लिमिट को इमरजेंसी एक्सेप्शन नहीं, बल्कि गवर्नेंस का एक परमानेंट प्रिंसिपल बनाना होगा। मौजूदा मॉडल पर बने रहने का मतलब है उन संकटों को आम मानना जो लगातार, गंभीर और नुकसान पहुंचाने वाले होते जा रहे हैं। इंसानियत का भविष्य सिर्फ़ इस बात पर निर्भर नहीं करता कि हम क्या बना सकते हैं, बल्कि सबसे बढ़कर इस बात पर निर्भर करता है कि हम अपने ज़िंदा रहने के लिए क्या सीमित कर सकते हैं।

लगातार बढ़ने का दबाव कम करके, आर्थिक और पर्यावरण से जुड़े संकटों की बारंबारता कम करना, संस्थाओं की स्थिरता बढ़ाना और आने वाली पीढ़ियों के लिए चीज़ों की हालत बचाना मुमकिन हो जाता है। जो समाज अपनी इच्छाओं को जीवन की क्वालिटी, पब्लिक हेल्थ और सस्टेनेबिलिटी की ओर मोड़ते हैं, वे ज़्यादा संतुलित सामाजिक रिश्ते बनाते हैं और अर्थव्यवस्थाएं सिस्टम के गिरने के प्रति कम कमज़ोर होती हैं। ज़्यादा से चलने वाले मॉडल पर बने रहने का मतलब है उन संकटों को और गहरा करना जो पहले से ही दिख रहे हैं। भविष्य सिर्फ़ इस बात से तय नहीं किया जा सकता कि इंसानियत क्या बना सकती है, बल्कि इस बात से तय किया जा सकता है कि वह अपने ज़िंदा रहने के नाम पर क्या सीमित कर पाएगी।

4. बहुत ज़्यादा ज़रूरतें और रिसोर्स की कमी

एक सीमित ग्रह ऐसी इच्छाओं को कैसे पूरा कर सकता है जिनकी कोई सीमा नहीं लगती? बहुत ज़्यादा ज़रूरतों और कम रिसोर्स के बीच का तनाव हमारे समय की सबसे बड़ी चुनौतियों की जड़ है। जैसे-जैसे आबादी बढ़ती है, खपत का तरीका तेज़ होता है और चीज़ों की उम्मीदें बढ़ती हैं, यह बात और साफ़ होती जाती है कि कुदरती, एनर्जी और पैदावार वाले रिसोर्स की ठोस सीमाएँ होती हैं। यह असंतुलन सिर्फ़ आर्थिक नहीं है: यह सामाजिक और पर्यावरण से जुड़ी ज़िंदगी का भविष्य तय करता है।

यह समस्या कच्चे माल की बढ़ती कीमतों, पानी, ज़मीन और एनर्जी रिसोर्स पर दबाव, और ज़रूरी चीज़ों तक सबकी पहुँच पक्की करने में बढ़ती मुश्किल के रूप में सामने आती है। खाने की कमी से कीमतें बढ़ती हैं, सबसे कमज़ोर लोगों तक पहुँच कम होती है और सामाजिक अस्थिरता पैदा होती है। एनर्जी रिसोर्स पर दबाव ट्रांसपोर्ट, प्रोडक्शन और इंफ्रास्ट्रक्चर पर असर डालता है, जबकि पर्यावरण का नुकसान कुदरती सिस्टम के फिर से बनने की काबिलियत को ही कमज़ोर कर देता है। दूसरे शब्दों में, इसका असर रोज़मर्रा की ज़िंदगी से लेकर दुनिया भर की स्थिरता तक फैला हुआ है। मौजूदा मॉडल एक बहुत बड़ा और शायद अस्थिर स्ट्रक्चरल विरोधाभास दिखाता है: यह इस आधार पर बनाया गया था कि खपत हमेशा बढ़ सकती है, भले ही ज़िंदगी को बनाए रखने वाला मटीरियल ज़रूरी तौर पर सीमित हो। इस विरोधाभास की वजह एक ऐसा इकोनॉमिक और कल्चरल सिस्टम है जो डिमांड में लगातार बढ़ोतरी को बढ़ावा देता है, खपत को सफलता का पैमाना मानता है, और धरती की ठोस सीमाओं पर विचार किए बिना, लगातार विकास के विचार को नॉर्मल बनाता है। ज़मीन, पानी, एनर्जी, मिनरल, उपजाऊ मिट्टी और बायोडायवर्सिटी के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है जैसे वे कभी खत्म न हों।

मौजूदा संकट का रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर बहुत बुरा असर पड़ रहा है। यह खाने की चीज़ों की बढ़ती कीमतों, एनर्जी की बढ़ती कीमत, साफ़ पानी तक पहुँच की कमी, घरों की बिगड़ती हालत और ज़रूरी चीज़ों के लिए संघर्ष में साफ़ दिखता है। जो लोग इस मटीरियल की असमानता की कीमत चुकाते हैं, वे सबसे ज़्यादा कमज़ोर आबादी हैं, जो कमी के असर को सबसे पहले और सबसे ज़्यादा महसूस करती हैं। जहाँ खास अधिकार वाले ग्रुप जमा किए गए कैपिटल से खुद को बचाने में कामयाब हो जाते हैं, वहीं ज़्यादातर लोग कमी की कड़वी सच्चाई का सामना करते हैं: भूख, राशनिंग, ज़बरदस्ती विस्थापन और बिगड़ते रहने के हालात। ज़मीन, पानी और एनर्जी रिसोर्स को लेकर झगड़े सीधे तौर पर इंसानों को तकलीफ़ देते हैं, बड़े पैमाने पर बीमारियाँ फैलाते हैं और

ऐसी मौतें होती हैं जिन्हें रोका जा सकता है। जब ज़रूरतें आर्थिक और सांस्कृतिक नियमों से लगातार बढ़ती जाती हैं, तो कमी कोई अपवाद नहीं रहती और सामाजिक सच्चाई का एक स्थायी हिस्सा बन जाती है। सिस्टम अपने विस्तार को बनाए रखने के लिए कभी न खत्म होने वाली इच्छाएँ पैदा करता है, जबकि साथ ही उस भौतिक आधार को तेज़ी से खत्म कर देता है जो इसे मुमकिन बनाता है। यही मुख्य उलझन है: पूरी तरह से सीमाओं वाली दुनिया में अनलिमिटेड ज़रूरत की भावना पैदा होती है। पहचान, इज़्ज़त और अपनेपन के तरीके के तौर पर जितना ज़्यादा खपत को बढ़ावा दिया जाता है, रिसोर्स पर उतना ही ज़्यादा दबाव पड़ता है, जिनकी भरपाई धीमी होती है या कई मामलों में नामुमकिन होती है।

एक नए तरीके की ज़रूरत है, जो रिसोर्स के सही मैनेजमेंट और ज़रूरत के कॉन्सेप्ट को ही फिर से तय करने पर आधारित हो। यह बदलाव इंसान की असली ज़रूरतों और आर्थिक सिस्टम द्वारा बनावटी तौर पर पैदा की गई माँगों के बीच साफ़ फ़र्क के साथ शुरू होना चाहिए। पहला कदम खाना, घर, सेहत, एनर्जी, मोबिलिटी और शिक्षा जैसी बुनियादी सामूहिक प्राथमिकताओं की पहचान करना और इन बुनियादों के आस-पास प्रोडक्शन को फिर से व्यवस्थित करना है। इंस्टीट्यूशनल शब्दों में, इसके लिए ट्रांसपेरेंट पब्लिक रिसोर्स प्लानिंग सिस्टम बनाने की ज़रूरत है, जो सप्लाई, डिमांड, स्ट्रेटेजिक स्टॉकपाइल और एनवायरनमेंटल रीजेनरेशन कैपेसिटी को मॉनिटर कर सकें। प्रपोज़्ड मॉडल डिस्ट्रिब्यूटिव एफिशिएंसी, सस्टेनेबल इनोवेशन और कॉन्शस कंजम्प्शन से गाइडेड है। असल में, इसका मतलब है कम एनवायरनमेंटल इम्पैक्ट वाली टेक्नोलॉजी, मटीरियल रीयूज़, सर्कुलर इकॉनमी, रिन्यूएबल एनर्जी और पब्लिक पॉलिसी में इन्वेस्ट करना जो पूरी प्रोडक्शन चेन में वेस्ट को कम करती हैं। साथ ही, रेगुलेटरी मैकेनिज्म को ऐसे इकोनॉमिक तरीकों पर रोक लगानी चाहिए जो बहुत ज़्यादा कंजम्प्शन, समय से पहले डिस्पोजल और कम रिसोर्स के गलत इस्तेमाल को बढ़ावा देते हैं।

इस बदलाव का उन इकोनॉमिक सेक्टर से ज़रूर विरोध होता है जिनका मुनाफ़ा बढ़ते कंजम्प्शन और डिमांड के आर्टिफिशियल विस्तार पर निर्भर करता है, और यह विरोध सिर्फ़ प्रोडक्शन के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। यह कल्चरल, एडवरटाइजिंग और पॉलिटिकल क्षेत्रों में भी दिखता है, ऐसे स्ट्रक्चर के ज़रिए जो इच्छा को एक परमानेंट ज़रूरत में बदल देते हैं और लगातार कंजम्प्शन को इकोनॉमिक स्टेबिलिटी का आधार बना देते हैं। बड़ी प्रोडक्शन चेन, प्लान्ड ऑब्सोलेसेन्स पर निर्भर सेक्टर, ज़रूरी चीज़ों के लिए सट्टेबाज़ी वाले बाज़ार, और कमी पैदा करके फ़ायदा उठाने वाले ग्रुप, रेगुलेशन की किसी भी कोशिश को ग्रोथ, रोज़गार और पसंद की आज़ादी

के लिए खतरा बताते हैं। मौजूदा सिस्टम इस विचार को बनाए रखना चाहता है कि ज़्यादा कंजम्प्शन करना तरक्की का मतलब है, तब भी जब यह प्रोसेस चीज़ों की कमी और सामाजिक असमानता को और बढ़ाता है।

पहला कदम डिमांड के आर्टिफिशियल पैटर्न और रोज़मर्रा की बढ़ती कमी के बीच सीधे लिंक को आम जनता को दिखाना है। जब लोग यह समझ जाते हैं कि खाने, एनर्जी, घर और पानी की बढ़ती कीमतें बदकिस्मती से नहीं, बल्कि एक ऐसे इकोनॉमिक मॉडल से आती हैं जो ज़्यादा, बर्बादी और कंसंट्रेशन को बढ़ावा देता है, तो बदलाव थ्योरेटिकल नहीं लगता और सामूहिक ज़िंदा रहने के लिए एक ठोस ज़रूरत बन जाता है। इसके बाद, हमें ज़रूरी रिसोर्स के प्रोडक्शन, डिस्ट्रीब्यूशन और कंजम्प्शन के बारे में प्रोग्रेसिव रिफॉर्म लागू करने होंगे। इसका मतलब है बड़े पैमाने पर वेस्ट को कंट्रोल करने के लिए मैकेनिज्म बनाना, सस्टेनेबल प्रोडक्शन चेन को बढ़ावा देना, ज़रूरी रीसाइक्लिंग टारगेट को बढ़ाना और ऐसे रेगुलेटरी फ्रेमवर्क बनाना जो डिमांड के आर्टिफिशियल एक्सपेंशन को रोकें। सर्कुलर इकॉनमी पॉलिसी, बहुत ज़्यादा वेस्ट पर टैक्स, कम इम्पैक्ट वाली टेक्नोलॉजी के लिए इंसेंटिव और स्ट्रेटेजिक रिसोर्स स्टॉक की सुरक्षा ऐसे उपाय हैं जो धीरे-धीरे एक्सपेंसिव मॉडल पर डिपेंडेंस कम करते हैं।

फिर सोशल मेजॉरिटी को नॉर्मेटिव मेजॉरिटी में बदलना बहुत ज़रूरी है। पब्लिक प्रेशर से लोकल रिसोर्स मैनेजमेंट काउंसिल, सख़्त एनवायरनमेंटल और प्रोडक्शन कानून, लॉन्ग-टर्म पब्लिक प्लानिंग, और सप्लाई चेन के बारे में पूरी ट्रांसपेरेंसी पक्का करने वाले मैकेनिज्म बनने चाहिए। सेंट्रल स्ट्रेटेजी यह है कि कमी को इकोनॉमिक फायदे और पावर के कंसंट्रेशन के टूल के तौर पर इस्तेमाल होने से रोका जाए। मौजूदा मॉडल पर बने रहने का मतलब है यह मानना कि कमी मेजॉरिटी के लिए एक परमानेंट कंडीशन बन जाएगी ताकि कुछ लोगों की ज़्यादतियों को बनाए रखा जा सके।

भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि हम यह पहचानने की हमारी काबिलियत रखते हैं कि कोई भी समाज अपने होने की फिजिकल लिमिट को नज़रअंदाज़ करके तरक्की नहीं कर सकता। बेहतर रिसोर्स मैनेजमेंट से कचरा कम होता है, ज़रूरी चीज़ों तक पहुँच बढ़ती है और आर्थिक स्थिरता मज़बूत होती है। क्लीन टेक्नोलॉजी और सर्कुलर प्रोडक्शन मॉडल को अपनाने से पर्यावरण पर दबाव कम होता है और भविष्य के संकटों का सामना करने के लिए समाज की सहनशक्ति बढ़ती है। अनगिनत ज़रूरतों और कम संसाधनों के बीच का टकराव इंसानियत के आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरण के लिए एक मुख्य मुद्दा है। मौजूदा मॉडल पर बने रहने का

मतलब है संकटों का गहरा होना। भविष्य के किसी भी गंभीर प्रोजेक्ट के लिए सीमाएँ तय करना और प्राथमिकताओं को फिर से व्यवस्थित करना एक ज़रूरी ज़रूरत बन गई है।

5. प्रेस – सच और झूठ

हम ऐसी दुनिया में सच और मैनिपुलेशन में कैसे फर्क कर सकते हैं, जहाँ जानकारी हमारी वेरिफ़ाई करने की क्षमता से ज़्यादा तेज़ी से फैलती है? यह आजकल की ज़िंदगी का एक मेन टॉपिक है, क्योंकि जानकारी न सिर्फ़ असलियत बताती है बल्कि पॉलिटिकल, इकोनॉमिक और सोशल फ़ैसलों पर भी असर डालती है। डिजिटल स्पीड वाले इस ज़माने में, सच और गलत जानकारी के बीच का टकराव अब कोई छोटा-मोटा मुद्दा नहीं रहा, बल्कि यह पब्लिक डिबेट की क्वालिटी तय करने लगा है।

आज के समय में, मीडिया पब्लिक ओपिनियन बनाने में अहम रोल निभाता है। न्यूज़ स्टोरीज़ सिक्योरिटी, इकोनॉमी, हेल्थ, साइंस और गवर्नेंस पर सोच बनाती हैं, वोटिंग के फ़ैसलों से लेकर रोज़मर्रा के व्यवहार तक हर चीज़ पर असर डालती हैं। साथ ही, सोशल मीडिया और इंस्टेंट मैसेजिंग प्लेटफ़ॉर्म के बढ़ने से अनवेरिफ़ाइड कंटेंट की पहुँच बढ़ गई है, जिससे झूठी जानकारी कुछ ही मिनटों में लाखों लोगों तक पहुँच जाती है।

अभी के मॉडल की समस्या स्पीड, इकोनॉमिक फ़ायदों और फ़ैक्ट-चेकिंग में सख्ती की कमी के मेल से पैदा होती है। जानकारी, जिसे पब्लिक लाइफ़ में क्लैरिफ़िकेशन और सही गाइडेंस के लिए एक टूल के तौर पर काम करना चाहिए, तुरंत असर, ऑडियंस के नंबर और एंगेजमेंट के लॉजिक का हिस्सा बन गई है। इसकी वजह पहुंच, असर और मोनेटाइजेशन का लगातार दबाव है, जो अक्सर एक्यूरेसी और पब्लिक अकाउंटेबिलिटी की कीमत पर सर्कुलेशन की स्पीड को प्रायोरिटी देता है। इसका नतीजा यह होता है कि अधूरा, तोड़-मरोड़कर पेश किया गया या जानबूझकर गलत कंटेंट बड़े पैमाने पर फैलता है। जब सच पीछे छूट जाता है, तो समाज की सही फैसले लेने की काबिलियत ही खत्म हो जाती है। इस मामले में, झूठ जानकारी देने में गलती नहीं रह जाता और समाज में बिखराव की एक बड़ी ताकत बन जाता है। यह चुनावी प्रोसेस, आर्थिक फैसलों, पब्लिक हेल्थ पॉलिसी और सुरक्षा, साइंस और न्याय की सोच में दखल देता है। इस गलत जानकारी की कीमत आम जनता चुकाती है: परिवार गलत जानकारी के आधार पर मेडिकल फैसले लेते हैं, नागरिक मैनिपुलेटेड नैरेटिव के असर में वोट देते हैं, और कम्युनिटी डर, नफरत या बदनामी का निशाना बनती हैं। बहुत खराब हालात में, गलत जानकारी से जानें जाती हैं, चाहे

वह सोशल पैनिक हो, इलाज से मना करना हो, मिलकर हिंसा हो या ज़रूरी इंस्टीट्यूशन पर भरोसा टूटना हो। इस सिस्टम से फायदा उठाने वालों में इकोनॉमिक ग्रुप होते हैं जो ध्यान खींचकर पैसे कमाते हैं, पॉलिटिकल एक्टर जो स्ट्रेटेजिक गलत जानकारी से फायदा उठाते हैं, और पावर स्ट्रक्चर जो नैरेटिव को कंट्रोल के टूल के तौर पर इस्तेमाल करते हैं। जब जानकारी को पब्लिक गुड के बजाय असर डालने वाली चीज़ माना जाने लगता है, तो शेयर्ड रियलिटी की सोच ही टूट जाती है।

ट्रांसपेरेंसी, कड़े वेरिफिकेशन और क्रिटिकल मीडिया लिटरेसी पर आधारित अप्रोच की ज़रूरत है। इस बदलाव के पहले कदम में इंडिपेंडेंट फैक्ट-चेकिंग मैकेनिज्म को इंस्टीट्यूशनल रूप से मज़बूत करना शामिल है, जिसमें ट्रांसपेरेंट ऑडिटिंग और क्लियर मेथोडोलॉजिकल क्राइटेरिया के तहत स्ट्रक्चर हों। साथ ही, मीडिया आउटलेट्स को ज़्यादा एडिटोरियल ज़िम्मेदारी लेनी चाहिए, जिसमें सुधार के लिए ज़रूरी प्रोटोकॉल, सोर्स का पता लगाना और फैक्ट, ओपिनियन और स्पॉन्सर्ड कंटेंट के बीच साफ़ अंतर हो।

स्ट्रक्चरल लेवल पर, प्रपोज़ल में स्कूलिंग के शुरुआती स्टेज से ही मीडिया लिटरेसी को बढ़ावा देने की बात कही गई है। इसका मतलब है कि बचपन से ही लोगों को सोर्स का मूल्यांकन करने, कहानी में दिलचस्पी पहचानने, सबूतों को वेरिफाई करने और जानकारी में हेरफेर के मैकेनिज्म को विस्तार से समझने के लिए तैयार करना। एजुकेशनल करिकुलम में क्रिटिकल मीडिया लिटरेसी, डेटा इंटरप्रिटेशन, आर्गुमेंटेटिव लॉजिक और सोर्स क्रेडिबिलिटी का एनालिसिस शामिल होना चाहिए। प्रेस को कंटेंट के तेज़ी से सर्कुलेशन के सिस्टम के बजाय कलेक्टिव एनलाइटनमेंट के एक इंस्ट्रूमेंट के रूप में फिर से स्थापित किया जाना चाहिए।

एक नए तरीके को ज़रूर उन सेक्टर से विरोध का सामना करना पड़ता है जिनका मुनाफ़ा सनसनी फैलाने, पोलराइज़ेशन और किसी भी कीमत पर ध्यान खींचने पर निर्भर करता है, और यह विरोध एक सोफिस्टिकेटेड और फैले हुए तरीके से काम करता है। ऐसे प्लेटफ़ॉर्म जो एंगेजमेंट से पैसे कमाते हैं, ऐसे पॉलिटिकल ग्रुप जो स्ट्रेटेजिक गलत जानकारी पर पलते हैं, सिर्फ़ ऑडियंस तक पहुँच से चलने वाले मीडिया आउटलेट, और नैरेटिव शॉक पर निर्भर आर्थिक स्ट्रक्चर, जानकारी के शोर को बढ़ाकर मौजूदा मॉडल को बनाए रखना चाहते हैं। स्ट्रैटेजी वेरिफ़िकेशन मैकेनिज़्म को बदनाम करना, सच की सोच को रिलेटिव बनाना, और परमानेंट शक को सोशल कंट्रोल के तरीके में बदलना है। कई मामलों में, झूठ खुद को साफ़ झूठ के तौर पर नहीं दिखाएगा,

बल्कि चुनिंदा तोड़-मरोड़, कॉन्टेक्स्ट के टुकड़ों और इमोशनल रूप से मोबिलाइज़ करने वाले नैरेटिव के सिस्टमैटिक दोहराव के रूप में पेश करेगा।

दूसरा स्टेज कम्युनिकेशन के इंस्टीट्यूशनल स्ट्रक्चर के अंदर होना चाहिए। इसका मतलब है एडिटोरियल ट्रांसपेरेंसी, इंडिपेंडेंट फ़ैक्ट-चेकिंग मैकेनिज़्म, सोर्स का पता लगाने की क्षमता, और मीडिया आउटलेट और प्लेटफ़ॉर्म की ओर से साफ़ सुधार की ज़िम्मेदारियों के लिए पब्लिक प्रोटोकॉल बनाना। कंटेंट लेबलिंग, एल्गोरिदम ऑडिटिंग, न्यूज़, ओपिनियन और एडवरटाइजिंग के बीच साफ फर्क, साथ ही जानबूझकर गलत जानकारी देने पर उसी हिसाब से रोक, ये सब सिस्टम में हेरफेर की गुंजाइश कम करने के कदम हैं। लोगों का दबाव परमानेंट एजुकेशनल पॉलिसी, इंडिपेंडेंट एथिक्स काउंसिल, डिजिटल प्लेटफॉर्म के ट्रांसपेरेंट रेगुलेशन और पब्लिक अकाउंटेबिलिटी के लिए कमिटेड प्रेस को मजबूत करने में बदलना चाहिए। हर नए कदम से वैल्यू के अकेले क्राइटेरिया के तौर पर ध्यान खींचने की काबिलियत कम होनी चाहिए और सच्चाई के लिए इंस्टीट्यूशनल कमिटमेंट को बढ़ाना चाहिए। हमारा मकसद इन्फॉर्मेशनल भरोसे को डेमोक्रेसी का परमानेंट इंफ्रास्ट्रक्चर बनाना होना चाहिए।

इनफॉर्मेशन में भरोसे के बिना, कोई सही सोच-विचार नहीं हो सकता। सच्चाई के प्रति कमिटमेंट के बिना, कोई फंक्शनल डेमोक्रेसी या टिकाऊ कलेक्टिव फ्यूचर नहीं हो सकता। प्रेस की ईमानदारी को बचाना, एक ऐसे समाज की संभावना को बचाना है जो सोचने, फैसला करने और असलियत पर काम करने में काबिल हो। वेरिफिकेशन में ज़्यादा सख्ती और लोगों की ज़्यादा क्रिटिकल तैयारी के साथ, गलत जानकारी का फैलना कम होता है, इंस्टीट्यूशनल भरोसा मजबूत होता है, और पब्लिक डिबेट की क्वालिटी बेहतर होती है। एक अच्छी तरह से जानकारी वाला समाज हेरफेर के लिए कम कमजोर हो जाता है और सही सहमति बनाने में ज़्यादा काबिल हो जाता है। एक ज़िम्मेदार प्रेस और क्रिटिकल इन्फॉर्मेशन कल्चर को बचाना अब कोई इंटेलेक्चुअल ऑप्शन नहीं रहा है, बल्कि यह सोशल समझदारी को बनाए रखने के लिए एक ज़रूरी ज़रूरत बन गया है।

6. खून के रिश्ते बनाम प्यार के रिश्ते

असल में एक परिवार को क्या बनाए रखता है: बायोलॉजिकल विरासत या प्यार भरी मौजूदगी? यह थीम सोशल ऑर्गनाइज़ेशन के सबसे पुराने स्ट्रक्चर में से एक को यह सवाल करके चुनौती देती है कि क्या परिवार के रिश्ते को मुख्य रूप से जेनेटिक्स से तय किया जाना चाहिए या

रोज़ाना की देखभाल, ज़िम्मेदारी और अपनेपन के आधार पर। बदलती दुनिया में, यह सोच इंसानों के साथ रहने के नए तरीकों को समझने के लिए ज़रूरी हो गई है।

आजकल, परिवार के स्ट्रक्चर सिर्फ़ खून के रिश्ते पर आधारित पारंपरिक मॉडल तक सीमित नहीं हैं। गोद लेने, सामाजिक-भावनात्मक रिश्तों, सौतेले पिता, सौतेली माँ, करीबी दोस्तों और कम्युनिटी सपोर्ट नेटवर्क से बने परिवार दिखाते हैं कि प्यार के अनुभव का बायोलॉजिकल ओरिजिन से कहीं ज़्यादा गहरा असर होता है। इस टॉपिक की अहमियत रोज़मर्रा की ज़िंदगी में साफ़ दिखती है: इमोशनल सपोर्ट, पढ़ाई, सुरक्षा और किसी इंसान की पहचान उन लोगों से बनती है जो मौजूद हैं, न कि सिर्फ़ उन लोगों से जिनका खून एक जैसा है।

पारंपरिक मॉडल, जब सिर्फ़ बायोलॉजिकल विरासत पर पूरी तरह से केंद्रित होता है, तो उसमें बहुत ज़्यादा कमियाँ होती हैं और कई मामलों में, यह इंसानी तौर पर दर्दनाक होता है। इसका कारण यह है कि परिवार की लेजिटिमेसी, अपनेपन और सामाजिक पहचान के लिए खून के रिश्ते को लगभग खास तौर पर महत्व दिया जाता है। इस लॉजिक के तहत, बायोलॉजिकल रिश्ते को पूरी तरह सच माना जाता है, जबकि देखभाल, साथ रहने और रोज़ाना की मौजूदगी से बने रिश्तों को दूसरे दर्जे पर रखा जाता है। यह स्ट्रक्चर इंसान को बहुत ज़्यादा दुख देता है। खून के रिश्तों के बाहर भी लोगों को अपनापन, सुरक्षा और प्यार मिलता है, लेकिन वे सामाजिक और संस्थागत नियमों से अनजान रहते हैं। कुछ बच्चे दादा-दादी, चाचा, सौतेले पिता, सौतेली माँ, इनफॉर्मल गोद लेने वाले परिवारों या कम्युनिटी केयर नेटवर्क में पले-बढ़े होते हैं, जो परिवार की भूमिका पूरी तरह से निभाने के बावजूद, वैसी सामाजिक पहचान नहीं पाते। जब लेजिटिमेसी सिर्फ़ खून के रिश्ते को दी जाती है, तो असली सपोर्ट के बजाय फॉर्मल ज़िम्मेदारी से ज़्यादा पहचाने जाने वाले ठंडे स्ट्रक्चर को सही ठहराने का खतरा होता है।

इस रोकने वाले नज़रिए की कीमत सबसे ज़्यादा उन लोगों को चुकानी पड़ती है जो पारंपरिक मॉडल के किनारे पर रहते हैं: अलग तरह के पारिवारिक इंतज़ाम में रहने वाले बच्चे, बिना फॉर्मल रिश्तों वाले लोगों द्वारा देखभाल किए जाने वाले बुज़ुर्ग लोग, जोड़े और ऐसे असरदार नेटवर्क जो बिना किसी संस्थागत पहचान के रोज़मर्रा की ज़िंदगी को बनाए रखते हैं। यह दर्द अधिकारों के बहिष्कार, ज़रूरी फ़ैसलों में आवाज़ की कमी, दी गई देखभाल को पहचान न मिलने और बहुत ज़्यादा मामलों में, इमोशनल और चीज़ों को छोड़ने में दिखता है। सामाजिक-भावनात्मक रिश्तों का गायब होना सिर्फ़ एक सोच का मुद्दा नहीं है: इसका सीधा असर सुरक्षा, अपनेपन और इंसानी इज़्ज़त पर पड़ता है।

हमें प्यार को इंसानी रिश्तों के एक स्ट्रक्चरिंग एलिमेंट के तौर पर पहचानना होगा। इस बदलाव का पहला कदम कानूनी और सामाजिक लेवल पर परिवार और अपनेपन के कॉन्सेप्ट को बढ़ाना है, साथ रहने, आपसी देखभाल और दूसरे की ज़िंदगी में मौजूद रहने के सोचे-समझे फ़ैसले से बने रिश्तों को औपचारिक रूप से पहचान देना है। इंस्टीट्यूशनल शब्दों में, इसका मतलब है कस्टडी, विरासत, कानूनी रिप्रेजेंटेशन, मेडिकल फ़ैसलों और साथ रहने के अधिकारों के नियमों की समीक्षा करना, ताकि इमोशनल सच्चाई की वही अहमियत हो जो बायोलॉजिकल ओरिजिन की है। हमें खून के रिश्ते की खासियत को रिलेशनल लेजिटिमेसी के एक मॉडल से बदलना होगा, जिसमें असरदार देखभाल, ली गई ज़िम्मेदारी और लगातार मौजूदगी की स्ट्रक्चरिंग वैल्यू हो। खून और प्यार का विरोध करने के बजाय, नया नज़रिया यह मानता है कि परिवार, सबसे बढ़कर, देखभाल के ठोस अनुभव में महसूस होता है। इस मायने में, प्यार सिर्फ़ एक कॉम्प्लिमेंट नहीं रह जाता और सामाजिक जीवन के संगठन में एक सेंट्रल जगह लेने लगता है।

इस बदलाव का विरोध होगा, खासकर कल्चरल, लीगल और इंस्टीट्यूशनल स्ट्रक्चर में, जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से लेजिटिमेसी को बायोलॉजिकल इनहेरिटेंस और फॉर्मल ट्रेडिशन से जोड़ा है। विरोध गहरे बैठे सोशल नॉर्म्स, रोकने वाली लीगल व्याख्याओं और उन बातों से होगा जो सगे संबंध को ही परिवार से जुड़े होने का एकमात्र जायज़ आधार बताती हैं। विरोध सिर्फ कॉन्सेप्ट तक ही सीमित नहीं होगा, बल्कि कस्टडी, इनहेरिटेंस, लीगल रिप्रेजेंटेशन, विज़िटेशन राइट्स और इंस्टीट्यूशनल रिकग्निशन से जुड़े फैसलों में भी दिखेगा।

पहला स्टेज फैसले लेने और लीगल स्ट्रक्चर के अंदर होना चाहिए। इसका मतलब है परिवार, कस्टडी, इनहेरिटेंस, हॉस्पिटल राइट्स, सिविल रिप्रेजेंटेशन और चाइल्ड प्रोटेक्शन से जुड़े कानूनों में धीरे-धीरे बदलाव करना, ताकि जब भी देखभाल और ज़िम्मेदारी की पक्की मौजूदगी हो, तो सोशियो-अफेक्टिव बॉन्ड को बायोलॉजिकल बॉन्ड के बराबर पहचान मिले। अफेक्टिव परिवारों की लीगल रिकग्निशन, विज़िटेशन राइट्स का विस्तार, नॉन-बायोलॉजिकल केयरगिवर्स की सुरक्षा और बड़े फैमिली नेटवर्क की इंस्टीट्यूशनल वैलिडेशन मौजूदा मॉडल की सख्ती को कम करते हैं। बच्चों की प्रोटेक्शन, एडॉप्शन सपोर्ट, फैमिली असिस्टेंस और कई तरह के अपनेपन की लीगल रिकग्निशन के लिए पब्लिक पॉलिसी में पॉपुलर प्रेशर को बदलने की ज़रूरत है। हर नई तरक्की के साथ, सिर्फ़ ओरिजिन की फॉर्मैलिटी के आधार पर खाली बॉन्ड को खास अधिकार मिलने की गुंजाइश खत्म होनी चाहिए।

एक समाज जो सिर्फ़ ओरिजिन को पहचानता है लेकिन असली देखभाल को नज़रअंदाज़ करता है, वह खाली बॉन्ड को सही ठहराने और उन लोगों को इज्ज़त न देने का रिस्क उठाता है जो सच में दूसरों की ज़िंदगी को सहारा देते हैं। इमोशनल बॉन्ड को सही रिश्ते के तौर पर पहचानने से, सोशल प्रोटेक्शन बढ़ता है, लोगों की इमोशनल हेल्थ मज़बूत होती है, और ज़्यादा सबको साथ लेकर चलने वाले और काम करने वाले फैमिली नेटवर्क बनाना मुमकिन हो जाता है। जो लोग पहले पारंपरिक मॉडल के किनारे पर थे, उन्हें पहचान, स्टेबिलिटी और अपनापन मिलता है, जिससे साइकोलॉजिकल और सोशल कमज़ोरियाँ कम होती हैं।

यह बहस प्राइवेट दायरे से आगे बढ़कर कम्युनिटी के कॉन्सेप्ट तक पहुँचती है। एक समाज जो इंसानी रिश्तों की बुनियाद के तौर पर प्यार की कीमत को पहचानता है, वह ज़्यादा सबको साथ लेकर चलने वाला, ज़्यादा मज़बूत और लोगों की असली ज़रूरतों के ज़्यादा करीब बनता है। सोशल स्ट्रक्चर का भविष्य बायोलॉजिकल ओरिजिन पर कम और सच्चे, लंबे समय तक चलने वाले और इंसानी रिश्ते बनाने की काबिलियत पर ज़्यादा निर्भर होना चाहिए।

पार्ट ॥ — समाज का एक नया नज़रिया

7. ग्लोबल देश – सीमाओं से परे एक ग्लोब

अगर हम अभी भी दुनिया के बारे में सिर्फ़ पॉलिटिकल सीमाओं के अंदर ही सोचते हैं, तो हम महाद्वीपों में फैली समस्याओं को कैसे सुलझा सकते हैं? यह टॉपिक एक ऐसी सच्चाई के जवाब के तौर पर सामने आया है जो तेज़ी से एक-दूसरे पर निर्भर होती जा रही है, जिसमें क्लाइमेट, आर्थिक, हेल्थ और टेक्नोलॉजिकल संकट देश की सीमाओं को नहीं पहचानते। जानकारी, व्यापार और इंसानी आवाजाही के बहाव से जुड़ी दुनिया में, अलग-थलग देशों पर ज़ोर देना आज की मुश्किलों के साथ तेज़ी से बेमेल होता जा रहा है। समाज इंटरनेशनल प्रोडक्शन चेन, तुरंत डिजिटल नेटवर्क और दुनिया भर में एक जैसी चुनौतियों से जुड़े हुए हैं। किसी एक देश में फाइनेंशियल संकट ग्लोबल मार्केट पर असर डालता है। किसी इलाके का झगड़ा अलग-अलग महाद्वीपों पर एनर्जी और खाने की चीज़ों की कीमतों को बदल देता है। एक महामारी तेज़ी से ग्लोबल समस्या बन जाती है। लोकल फ़ैसलों का पहले से ही ग्लोबल असर होता है, और सिस्टम की चुनौतियों के सामने अलग-अलग जवाब काफ़ी नहीं होते।

इसका मुख्य कारण ग्लोबल सामूहिक ज़रूरतों पर तुरंत देश के हितों का हावी होना है। देश, सरकारें और आर्थिक ग्रुप कॉम्पिटिशन वाले खुद को बचाने के लॉजिक पर काम करते रहते हैं, और कम समय के अंदरूनी फ़ायदों को प्राथमिकता देते हैं, भले ही सामने आने वाली चुनौतियाँ पूरी तरह से भौगोलिक सीमाओं से परे हों। इसका नतीजा यह है कि क्लाइमेट चेंज, माइग्रेशन फ्लो, साइंटिफिक डेवलपमेंट, फ़ूड सिक्योरिटी, पब्लिक हेल्थ और इंटरनेशनल इकोनॉमिक स्टेबिलिटी जैसे मुख्य मुद्दों पर सहयोग करना बहुत मुश्किल है।

जब हर देश ग्लोबल समस्याओं का सामना करते हुए अकेले काम करता है, तो इसका नतीजा इनएफिशिएंसी, हितों का टकराव और स्ट्रक्चरल सॉल्यूशन को लागू करने में देरी होता है। इस तालमेल की कमी की कीमत वे लोग चुकाते हैं जो खराब मौसम की घटनाओं का सामना करने वाली आबादी, रिफ्यूजी और मजबूर माइग्रेंट, ट्रांसनेशनल हेल्थ संकटों से प्रभावित समुदाय, और आर्थिक रूप से कमज़ोर देश जो बड़े पावर सेंटरों द्वारा लिए गए फ़ैसलों के असर को बहुत ज़्यादा झेलते हैं। यह दर्द खाने की कमी, परिवारों के बड़े पैमाने पर बेघर होने, बढ़ती गरीबी और उन जानें जाने के रूप में दिखता है जिन्हें तेज़ और ज़्यादा तालमेल वाले ग्लोबल रिस्पॉन्स से बचाया जा सकता था।

क्लाइमेट संकट शायद इस उलटफेर का सबसे साफ़ उदाहरण है। एक इलाके में पॉल्यूटेंट का एमिशन इकोसिस्टम, इकॉनमी और आबादी पर पूरी दुनिया में असर डालता है। एक लोकल हेल्थ संकट जल्दी ही ग्लोबल खतरा बन सकता है। फिर भी, इंस्टीट्यूशनल रिस्पॉन्स बंटा हुआ रहता है, जो जियोपॉलिटिकल झगड़ों, इकोनॉमिक हितों और नेशनल चुनावी हिसाब-किताब से तय होता है। इस बंटवारे से फायदा उठाने वाले वे ग्रुप और स्ट्रक्चर हैं जिन्हें असरदार इंटरनेशनल रेगुलेशन की कमी, ग्लोबल रिसोर्स के असमान इस्तेमाल और सेंट्रल और पेरिफेरल देशों के बीच अंतर से फायदा होता है।

इंटरनेशनल कोऑपरेटिव गवर्नेंस और इंसानी जुड़ाव की बढ़ी हुई भावना पर आधारित एक नया तरीका ज़रूरी हो जाता है। एक ग्लोबल देश का मतलब कल्चरल पहचान, लोकल सॉवरेनिटी या नेशनल परंपराओं को खत्म करना नहीं है। इसके उलट, यह पॉलिटिकल, इकोनॉमिक और साइंटिफिक सहयोग के लिए परमानेंट मैकेनिज्म बनाने के बारे में है जो तब बॉर्डर पार कर सके जब समस्या के लिए ग्लोबल रिस्पॉन्स की ज़रूरत हो। इस बदलाव में क्लाइमेट, हेल्थ, फूड सिक्योरिटी और टेक्नोलॉजी जैसे स्ट्रेटेजिक एरिया में कोऑर्डिनेशन, मॉनिटरिंग और एग्जीक्यूशन के लिए असली कैपेसिटी वाले मल्टीलेटरल इंस्टीट्यूशन को मजबूत

करना शामिल है। इसका मतलब है कि अलग-अलग इलाकों में बैलेंस्ड रिप्रेजेंटेशन वाली सोच-समझकर ग्लोबल काउंसिल बनाना, इंटरनेशनल मुश्किलों के लिए शेयर्ड फाइनेंसिंग सिस्टम, कॉमन इमरजेंसी रिस्पॉन्स प्रोटोकॉल, और सस्टेनेबिलिटी और रिसोर्स के इस्तेमाल पर ज़रूरी एग्रीमेंट करना। प्रपोज़्ड मॉडल एक नेटवर्क्ड गवर्नेंस है, जिसमें नेशनल सॉवरेनिटी उन सुपरनेशनल बॉडीज़ के साथ मिलकर काम करती है जो ऐसे मुद्दों पर फोकस करती हैं, जो अपने नेचर से किसी भी देश की अकेले एक्शन लेने की कैपेसिटी से ज़्यादा हैं।

यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि इस बदलाव का विरोध होगा, खासकर देशों, आर्थिक गुटों और स्ट्रेटेजिक ग्रुप्स से, जिन्हें असर खोने, ज़िम्मेदारियों के दोबारा बंटवारे या एकतरफ़ा फ़ैसले लेने की अपनी क्षमता की लिमिटेशन का डर है। यह विरोध पूरी तरह से सॉवरेनिटी, जियोपॉलिटिकल झगड़ों, चुनिंदा प्रोटेक्शनिज़्म और कलेक्टिव सॉल्यूशन के नुकसान के लिए तुरंत राष्ट्रीय हितों की रक्षा के ज़रिए सामने आएगा। खास जगह पर काम करने की आदी पावर स्ट्रक्चर किसी भी सुपरनेशनल तरक्की को पहचान, राजनीतिक ऑटोनॉमी या अंदरूनी आर्थिक सुरक्षा के लिए खतरे के तौर पर पेश करने की कोशिश करेंगी। इसलिए, जब यह ग्लोबल सेंटर्स और बाहरी इलाकों के बीच ऐतिहासिक अंतरों को बनाए रखने के एक तरीके के तौर पर काम करता है, तो इसे समझदारी के तौर पर बचाव किया जाएगा।

इसलिए, बदलाव देशों के बीच अचानक दरार पर निर्भर नहीं कर सकता, बल्कि इंटरनेशनल कोऑपरेशन की जगहों पर धीरे-धीरे, मज़बूत और कानूनी एंट्री पर निर्भर करता है। हमें एक बड़ी सामाजिक जागरूकता बनानी होगी कि आज के मुख्य रिस्क, जैसे क्लाइमेट, फ़ूड सिक्योरिटी, ज़बरदस्ती माइग्रेशन, हेल्थ संकट, एनर्जी और फ़ाइनेंशियल स्टेबिलिटी, पहले से ही बड़े लेवल पर काम कर रहे हैं। जब ज़्यादातर लोगों को यह एहसास होता है कि लोकल समस्याओं के ग्लोबल कारण और असर होते हैं, तो ऐसे फ़ैसले लेने वाले स्ट्रक्चर की ज़रूरत को पॉलिटिकली सपोर्ट करना मुमकिन हो जाता है जो सीमाओं से परे हों। फिर, मौजूदा मल्टीलेटरल इंस्टीट्यूशन को मज़बूत करना और नए थीमैटिक गवर्नेंस फ़ोरम बनाना ज़रूरी है। फ़ैसले लेने वाले सिस्टम में एंट्री खास एरिया से होनी चाहिए: ग्लोबल हेल्थ, क्लाइमेट, साइंस, टेक्नोलॉजिकल रेगुलेशन और फ़ूड सिक्योरिटी। बाइंडिंग इंटरनेशनल प्रोटोकॉल, कोऑपरेटिव इमरजेंसी फ़ंड, रीजनल रैपिड रिस्पॉन्स काउंसिल और ऑडिटेबल जॉइंट गोल ऐसे ठोस उदाहरण हैं जो देशों के बीच भरोसा और लोगों की नज़र में लेजिटिमेसी बढ़ाते हैं।

पॉपुलर और डिप्लोमैटिक दबाव को सोच-समझकर काम करने वाली ग्लोबल काउंसिल में बदलने की ज़रूरत है, जिसमें बैलेंस्ड रिप्रेजेंटेशन, सॉलिडैरिटी-बेस्ड फ़ाइनेंसिंग के लिए ट्रांसपेरेंट सिस्टम और ट्रांसनेशनल संकटों का सामना करने में सक्षम एग्जीक्यूटिव स्ट्रक्चर हों। हर नए एग्रीमेंट को अलग-अलग जवाबों की गुंजाइश कम करनी चाहिए और कलेक्टिव को-रिस्पॉन्सिबिलिटी की सोच को मज़बूत करना चाहिए। इसका मकसद इंटरनेशनल कोऑपरेशन को कुल मिलाकर बनाना है: नेटवर्किंग के ज़रिए हल किया गया हर संकट अगले इंस्टीट्यूशनल कदम की ज़रूरत को मज़बूत करता है।

इंसानियत पहले से ही रिस्क, रिसोर्स और एक जैसी किस्मत शेयर करती है। कमी है ऐसे इंस्टीट्यूशन बनाने की जो दुनिया के लेवल पर सोच और काम कर सकें। ग्लोबल संकटों पर अलग-अलग जवाब देने का मतलब है, टाली जा सकने वाली तकलीफ़ को लंबा खींचना और सबका साथ देना। ग्लोबल सहयोग का लॉजिक हेल्थ, क्लाइमेट और आर्थिक संकटों पर तेज़ी से जवाब देने का पक्षधर है, साइंटिफिक जानकारी के सर्कुलेशन को मज़बूत करता है, और अलग-अलग देशों के हितों के बीच तनाव कम करता है। मिलकर बनाई गई पॉलिसी बनाने से डिस्ट्रिब्यूटिव एफिशिएंसी बढ़ती है, इंटरनेशनल स्टेबिलिटी को बढ़ावा मिलता है, और दुनिया के भविष्य के लिए सबकी ज़िम्मेदारी के विचार को मज़बूत करता है।

एक ग्लोबल देश के बारे में सोचना यह मानना है कि पॉलिटिकल सीमाएं अब इंसानियत की स्ट्रेटेजिक इंटेलिजेंस को सीमित नहीं कर सकतीं। मौजूदा सदी में एक ऐसे विज़न की ज़रूरत है जो कल्चरल डायवर्सिटी और स्ट्रक्चरल सहयोग को एक कर सके। दुनिया भर की समस्याओं पर अलग-अलग जवाबों में फंसे रहने का मतलब है, आने वाले संकटों को लंबा खींचना। ग्लोबल चेतना की ओर बढ़ना न सिर्फ़ ज़रूरी हो गया है, बल्कि ऐतिहासिक रूप से ज़रूरी भी हो गया है।

8. मुकाबले से मिलकर तरक्की तक

कितना कॉम्पिटिशन, जिसे तरक्की का पक्का इंजन माना जाता है, उसने किस हद तक डेवलपमेंट को आगे बढ़ाना बंद कर दिया है और समाज को ही बांटना शुरू कर दिया है? यह आज की संस्कृति के एक अहम हिस्से पर गहरी सोच है: यह सोच कि दूसरों को हराना आगे बढ़ने के लिए एक ज़रूरी शर्त है। एक-दूसरे पर तेज़ी से निर्भर होती दुनिया में, इस लॉजिक पर फिर से सोचना चाहिए, खासकर तब जब इसका असर सिर्फ़ एक व्यक्ति तक ही सीमित न रहे और सामाजिक, आर्थिक और इंस्टीट्यूशनल रिश्तों को बनाने लगे।

कॉम्पिटिशन ज़िंदगी के लगभग सभी हिस्सों में मौजूद है: जॉब मार्केट में, पढ़ाई में, इकॉनमी में और यहाँ तक कि आपसी रिश्तों में भी। कम उम्र से ही, लोगों को ऐसे सिस्टम में डाल दिया जाता है जो तुलना करने लायक परफॉर्मेंस, मौकों की कमी और लगातार भेदभाव को इनाम देते हैं। इसके नतीजे हैं बढ़ता सामाजिक तनाव, कमज़ोर सहयोग, अलग-अलग पहुँच और ऐसे माहौल का बनना जिसमें किसी एक की सफलता कई लोगों के बाहर होने पर निर्भर करती है। यह सामाजिक, आर्थिक और इंस्टीट्यूशनल ज़िंदगी को एक ऑर्गनाइज़ करने वाले सिद्धांत के तौर पर कॉम्पिटिशन को पूरी तरह अपनाने में छिपा है। इसका कारण है किसी एक की परफॉर्मेंस को बहुत ज़्यादा महत्व देना, कमी का लॉजिक, और यह सोचना कि तरक्की सिर्फ़ दूसरों को हराकर ही हो सकती है। इस नज़रिए से, मिलकर जीना कॉम्पिटिशन के एक परमानेंट मैदान की तरह बन जाता है: लोग काम, पहचान, रिसोर्स, इज़्ज़त और यहाँ तक कि अपनेपन के लिए भी कॉम्पिटिशन करते हैं। इसका आखिरी असर एक कम मिलकर काम करने वाला, ज़्यादा बिखरा हुआ समाज बनना है जो स्ट्रक्चरल संकटों के लिए बहुत ज़्यादा कमज़ोर है।

इस मॉडल की कीमत वे लोग चुकाते हैं जिन पर परफॉर्मेंस के लिए लगातार दबाव रहता है, वे लोग जो लगातार कॉम्पिटिशन के लॉजिक को नहीं अपनाते, और वे समुदाय जो अपने अंदरूनी रिश्तों को कमज़ोर होते देखते हैं। परमानेंट दुश्मनी का लॉजिक चिंता, लगातार नाकामी की भावना और रिश्तों को इंसानियत से दूर करता है। इस मॉडल से फ़ायदा उठाने वाले इंस्टीट्यूशनल और इकोनॉमिक स्ट्रक्चर हैं जिन्हें प्रोडक्टिविटी, कंट्रोल और सोशल सिलेक्शन के लिए लगातार कॉम्पिटिशन से फ़ायदा होता है।

एक नए तरीके का प्रपोज़ल कॉम्पिटिशन के सभी रूपों को खत्म करना नहीं है, क्योंकि बेहतरीन बनने की कोशिश और चुनौतियों से पार पाना कुछ खास मामलों में पॉज़िटिव भूमिका निभा सकता है। मुख्य बात यह है कि इसे हेल्दी लिमिट में फिर से रखा जाए, ताकि यह सोशल ज़िंदगी की पूरी बुनियाद न बन जाए। इस बदलाव का पहला कदम इंस्टीट्यूशनल माहौल को नया आकार देना है। स्कूलों, यूनिवर्सिटी, कंपनियों और पब्लिक जगहों पर मिलकर काम करने वाले मॉडल को बढ़ावा देने और इनाम देने की ज़रूरत है।

प्रैक्टिकल तौर पर, इसका मतलब है ऐसे काम के सिस्टम बनाना जो एक-दूसरे को पूरा करने वाले स्किल, मिलकर काम करने वाले प्रोजेक्ट, एक जैसे लक्ष्य और पहचान के तरीकों पर आधारित हों, जो सिर्फ़ अलग-अलग काम को नहीं, बल्कि मिलकर काम करने को महत्व देते हों। पढ़ाई के क्षेत्र में, मिलकर सीखने के तरीकों, ग्रुप में समस्या सुलझाने और मिलकर लीडरशिप की

ट्रेनिंग को मज़बूत किया जाना चाहिए। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में, मिलकर काम करने वाले, मिलकर काम करने वाले और कम्युनिटी मॉडल को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, ताकि वे एक-दूसरे को बांटने और मिलकर समाधान बनाने के ठोस तरीके अपना सकें। यह हमेशा टकराव के लॉजिक को मिलकर आगे बढ़ने के लॉजिक से बदलने के बारे में है। मिलकर काम करने की समझ अलग-अलग क्षमताओं को आम भलाई के लिए एक साथ लाने में मदद करती है, जिससे ज़्यादा टिकाऊ, सबको साथ लेकर चलने वाले और मज़बूत समाधान मिलते हैं।

लेकिन, यह अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि इस बदलाव का उन कल्चर में कड़ा विरोध होगा जो दुश्मनी से बहुत ज़्यादा बने हैं और ऐसे स्ट्रक्चर हैं जो सिर्फ़ वैल्यू को पर्सनल परफॉर्मेंस से जोड़ते हैं। यह विरोध रैंकिंग और एक्सक्लूज़न पर आधारित एजुकेशनल मॉडल, परमानेंट कॉम्पिटिशन से बने प्रोफेशनल माहौल, दूसरों से आगे निकलने पर केंद्रित सफलता की कहानियों और ऐसे इंस्टीट्यूशन में मौजूद है जो कलेक्टिव अचीवमेंट के बजाय अलग-अलग नतीजों को इनाम देते हैं।

हमें ह्यूमन डेवलपमेंट के माहौल, खासकर स्कूलों और यूनिवर्सिटी को फिर से बनाना होगा, ताकि कोऑपरेशन को अब सेकेंडरी वैल्यू न माना जाए। ग्रुप प्रोजेक्ट, मिलकर प्रॉब्लम सॉल्व करना, जॉइंट कंट्रीब्यूशन के ज़रिए इवैल्यूएशन और कोऑपरेटिव लीडरशिप के लिए ट्रेनिंग को नए कल्चर का आधार बनना चाहिए। जब लोग शुरू में ही यह अनुभव करते हैं कि साथ मिलकर आगे बढ़ने का मतलब ज़मीन खोना नहीं है, तो सोशल सोच बदलने लगती है। दूसरा कदम वर्कप्लेस, कम्युनिटी और पब्लिक इंस्टीट्यूशन में उठाया जाना चाहिए। इसका मतलब है कि धीरे-धीरे सिर्फ़ कम्पेरेटिव इवैल्यूएशन मॉडल को ऐसे सिस्टम से बदलना जो स्किल, शेयर्ड गोल और कलेक्टिव नतीजों के इंटीग्रेशन को महत्व देते हैं। मल्टीडिसिप्लिनरी टीमें, कोऑपरेटिव प्रोजेक्ट की इंस्टीट्यूशनल पहचान, हॉरिजॉन्टल मैनेजमेंट मॉडल और कोऑपरेटिव और एसोसिएशन को मज़बूत करना ऐसे ठोस कदम हैं जो दुश्मनी के लॉजिक को एक एब्सोल्यूट प्रिंसिपल के तौर पर कमज़ोर करते हैं। समाज के ज़्यादातर लोगों को ऐसी पब्लिक पॉलिसी बनाने में हिस्सा लेना चाहिए जो कई लेवल पर सहयोग को मज़बूत करें: शिक्षा, अर्थव्यवस्था, विज्ञान, इनोवेशन और कम्युनिटी लाइफ़। हर नए मिलकर काम करने वाले स्ट्रक्चर को दूसरे को खतरा मानने की सोच को रोकना चाहिए और एक-दूसरे पर निर्भरता के नज़रिए को बढ़ाना चाहिए। हमें सहयोग को नैतिक अपवाद नहीं, बल्कि सामाजिक तरक्की के लिए एक आम तरीका बनाना चाहिए। कोई भी समाज तब तक एकता और भविष्य नहीं बना सकता जब तक उसके सदस्यों को एक-दूसरे को हमेशा के दुश्मन

के तौर पर देखना सिखाया जाता है। सच्ची तरक्की टूटने से नहीं, बल्कि मिलकर बनाने की काबिलियत से होती है। मिलकर काम करने वाले माहौल से ज़्यादा सामाजिक इनोवेशन, साइकोलॉजिकल सेहत और मुश्किल समस्याओं को हल करने में कुशलता आती है, क्योंकि वे अलग-अलग नज़रियों और टैलेंट को एक साथ लाने की इजाज़त देते हैं। मुकाबले की आदत पर काबू पाने का मतलब है यह पहचानना कि आज की सबसे बड़ी चुनौतियों के लिए मिलकर जवाब देने की ज़रूरत है। दुनिया भर के संकट, सामाजिक असमानता और सस्टेनेबिलिटी का हल अलग-अलग झगड़ों से नहीं, बल्कि बड़े पैमाने पर सहयोग की काबिलियत से होगा। भविष्य उनका नहीं होगा जो एक-दूसरे को हराते हैं, बल्कि उनका होगा जो मिलकर बनाना सीखते हैं।

9. इंटीग्रेटेड ऑटोनॉमस कम्युनिटी

लोकल ऑटोनॉमी को दबाए बिना एक मज़बूत समाज कैसे बनाया जाए? यह आज की दुनिया की एक बड़ी दुविधा है: लोगों की अपने इलाकों में फ़ैसले लेने की क्षमता को मज़बूत करने की ज़रूरत, बिना सहयोग के बड़े स्ट्रक्चर से कनेक्शन तोड़े। पूरी तरह सेंट्रलाइज़ेशन या अलग-थलग बँटवारे के बीच चुनने के बजाय, यह प्रस्ताव काम की आज़ादी और मिलकर एक होने के बीच बैलेंस बनाने की कोशिश करता है।

अभी, रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर सीधे असर डालने वाले कई फ़ैसले, जैसे कि आना-जाना, घर, खाना, शिक्षा और रिसोर्स का इस्तेमाल, ऐसे स्ट्रक्चर लेते हैं जो लोकल असलियत से बहुत दूर होते हैं। इससे एडमिनिस्ट्रेटिव काम में सुस्ती आती है, लोगों की ठोस ज़रूरतों का ठीक से पालन नहीं हो पाता, और नागरिकों और संस्थाओं के बीच दूरी महसूस होती है। जब कम्युनिटी के पास बहुत कम ऑटोनॉमी होती है, तो वे ऐसे स्टैंडर्ड मॉडल पर निर्भर हो जाते हैं जो हमेशा हर इलाके की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक खासियतों पर ध्यान नहीं देते।

अभी के मॉडल की समस्या बहुत ज़्यादा सेंट्रलाइज़ेशन और इलाके से बहुत ज़्यादा दूरी है। इसका कारण ऊँचे एडमिनिस्ट्रेटिव लेवल पर फ़ैसले लेने का एक जगह होना है, जो उन कम्युनिटी की ठोस असलियत से बहुत दूर है जिन पर वे कानून बनाते हैं और दखल देते हैं। एजुकेशन, हेल्थ, मोबिलिटी, सिक्योरिटी, हाउसिंग और रिसोर्स के इस्तेमाल से जुड़े फैसले ब्यूरोक्रेटिक स्ट्रक्चर लेते हैं जिन्हें लोकल खासियतों का एहसास नहीं होता। इसका नतीजा यह होता है कि हर इलाके की असली ज़रूरतों के हिसाब से पब्लिक पॉलिसी को बदलना मुश्किल हो

जाता है। इसका आखिरी असर रिसोर्स मैनेजमेंट में कमी, कम्युनिटी का कमज़ोर होना और सामूहिक जुड़ाव की भावना का कमज़ोर होना है।

जब कम्युनिटी सॉल्यूशन बनाने में हिस्सा नहीं लेती, तो सिस्टम अपनी पहचान और असर खो देता है। यह दूरी समाज के असल रूप में बहुत ठोस तरीके से दिखती है: पब्लिक काम जो लोकल ज़रूरतों पर ध्यान नहीं देते, ठीक से टारगेटेड सोशल प्रोग्राम नहीं, रिसोर्स की बर्बादी, और रोज़मर्रा की ज़रूरी समस्याओं पर तुरंत जवाब न देना। इस स्ट्रक्चर की कीमत सबसे कमज़ोर इलाकों के रहने वाले लोग चुकाते हैं, जो इंस्टीट्यूशनल तौर पर छोड़े जाने, खराब सर्विस और पॉलिटिकल तौर पर गायब होने की हमेशा की भावना के साथ जीते हैं। सफ़ाई की कमी, मोबिलिटी की कमी, शहरी असुरक्षा, और सुनने और एक्शन लेने के असली तरीकों की कमी में तकलीफ़ दिखती है।

बहुत ज़्यादा सेंट्रलाइज़ेशन कम्युनिटी की खुद को बदलाव लाने वाले एजेंट के तौर पर पहचानने की काबिलियत को कमज़ोर कर देता है। जब सारे सॉल्यूशन ऊपर से आते हैं, तो लोग एक पैसिव पोजीशन में आ जाते हैं, और उन्हें नाकाफी पॉलिसी मिलने की हालत में ला दिया जाता है। इससे सोशल डिमोबिलाइजेशन होता है, इंस्टीट्यूशन पर भरोसा कम होता है, और कम्युनिटी के रिश्ते कम होते हैं। इस स्ट्रक्चर से जिन्हें फायदा होता है, वे पॉलिटिकल और एडमिनिस्ट्रेटिव पावर के सेंटर होते हैं जो अथॉरिटी, बजट और असर डालने की कैपेसिटी को एक जगह इकट्ठा करते हैं, जिससे फैसले लेने और असलियत के बीच दूरियां बनी रहती हैं।

इंटीग्रेटेड ऑटोनॉमस कम्युनिटीज़ के प्रपोज़ल में ज़रूरी मुद्दों पर आस-पड़ोस, शहरों और इलाकों की सेल्फ-मैनेजमेंट कैपेसिटी को मज़बूत करना शामिल है, बिना बड़े कोऑपरेशन स्ट्रक्चर के साथ स्ट्रेटेजिक कनेक्शन को तोड़े। इस बदलाव में पहला कदम सीधे इलाके से जुड़े मुद्दों, जैसे अर्बन प्लानिंग, बजट की प्रायोरिटी, सोशल पॉलिसी और लोकल रिसोर्स के मैनेजमेंट पर फैसले लेने की पावर का धीरे-धीरे डीसेंट्रलाइज़ेशन होना चाहिए। इसका मतलब है कि सोच-समझकर कम्युनिटी काउंसिल, परमानेंट लोकल असेंबली, बाइंडिंग पार्टिसिपेटरी बजटिंग मैकेनिज्म और ऑपरेशनल ऑटोनॉमी के साथ इलाके के एडमिनिस्ट्रेटिव स्ट्रक्चर बनाना। हर कम्युनिटी में प्रायोरिटी पहचानने, सॉल्यूशन बनाने और अपने डेवलपमेंट के लिए दिए गए रिसोर्स के एक ज़रूरी हिस्से को मैनेज करने की असली कैपेसिटी होनी चाहिए। साथ ही, इन यूनिट्स को नॉलेज, टेक्नोलॉजी, फाइनेंसिंग और इंस्टीट्यूशनल सपोर्ट के लेन-देन के लिए रीजनल और नेशनल कोऑपरेटिव सिस्टम से जुड़े रहना चाहिए। हमें फैसले लेने की प्रॉक्सिमिटी को स्ट्रेटेजिक

इंटरडिपेंडेंस के साथ जोड़ना होगा। इसका मतलब है कि लोकल प्रॉब्लम के बारे में फैसले इलाके के अंदर ही होने चाहिए, जबकि बड़े लेवल के मुद्दे, जैसे रीजनल इंफ्रास्ट्रक्चर, एनर्जी सिक्योरिटी, हाई-कॉम्प्लेक्स हेल्थकेयर, हायर एजुकेशन और लॉजिस्टिक्स बड़े कोऑपरेटिव नेटवर्क के अंदर ही रहने चाहिए। इस तरह, ऑटोनॉमी अकेलापन नहीं बनती, बल्कि एक इंटीग्रेटेड सिस्टम के अंदर लोकल कैपेसिटी को मज़बूत करती है।

यह उम्मीद की जा सकती है कि इस मॉडल को सेंट्रलाइज़्ड स्ट्रक्चर से विरोध का सामना करना पड़ेगा, जो एडमिनिस्ट्रेटिव, पॉलिटिकल और बजटरी पावर के कंसंट्रेशन के आदी हैं। यह विरोध फ़ैसले लेने की पावर को अपने पास रखने, लोकल प्रोसेस के बहुत ज़्यादा ब्यूरोक्रेटाइज़ेशन और इस कहानी से दिखता है कि सिर्फ़ दूर के इंस्टीट्यूशनल सेंटर ही अच्छे से शासन करने की टेक्निकल कैपेसिटी रखते हैं। सेंट्रलाइज़ेशन न सिर्फ़ फ़ॉर्मल अथॉरिटी से बल्कि रिसोर्स, जानकारी और इन्वेस्टमेंट प्रायोरिटी के कंट्रोल से भी बना रहता है, जिससे कम्युनिटी के लिए उन समस्याओं पर असली ऑटोनॉमी पाना मुश्किल हो जाता है जिनका वे रोज़ सामना करते हैं।

इसलिए, बदलाव छोटे, लगातार और स्ट्रेटेजिक रूप से जमा होने वाले स्टेप्स में होना चाहिए, जिसकी शुरुआत लोकल फ़ैसले लेने की कैपेसिटी के धीरे-धीरे बढ़ने से हो। इसमें कम्युनिटी काउंसिल, टेरिटोरियल असेंबली, नेबरहुड एसोसिएशन और पार्टिसिपेटरी फ़ोरम को फ़ॉर्मल लेजिटिमेसी और पब्लिक जानकारी तक पहुँच के साथ मज़बूत करना शामिल है। जब आबादी हेल्थ, मोबिलिटी, सिक्योरिटी, एजुकेशन और इंफ्रास्ट्रक्चर जैसे टॉपिक पर प्रायोरिटी पहचानने में हिस्सा लेना शुरू करती है, तो सोशल मैजोरिटी का एक ठोस बेस बनता है, जो डीसेंट्रलाइज़ेशन को बनाए रखने में काबिल होता है। दूसरा स्टेज इंस्टीट्यूशनल लेवल पर होना चाहिए, जिसमें धीरे-धीरे पावर और बजट को छोटे-छोटे इलाकों में ट्रांसफर किया जाएगा। पार्टिसिपेटरी बजटिंग, तय लोकल फंड, सोच-समझकर पावर वाली काउंसिल और ज़रूरी सर्विसेज़ पर ऑटोनॉमी जैसी तरक्की ऐसे उदाहरण हैं जो डीसेंट्रलाइज़ेशन को प्रैक्टिकल और दिखने लायक बनाते हैं। हर सफल लोकल अचीवमेंट इस बात को कमज़ोर करती है कि सिर्फ़ सेंट्रलाइज़ेशन ही ऑर्डर और एफिशिएंसी लाता है। इसके बाद, ऑटोनॉमी को स्ट्रेटेजिक कोऑर्डिनेशन के साथ जोड़ना ज़रूरी हो जाता है। कम्युनिटीज़ को अलग-थलग आइलैंड की तरह काम नहीं करना चाहिए, बल्कि एक मल्टी-स्केलर कोऑपरेटिव नेटवर्क में नोड्स की तरह काम करना चाहिए। इसका मतलब है डेटा इंटीग्रेशन, जॉइंट प्लानिंग और रिसोर्स शेयरिंग के लिए रीजनल और नेशनल मैकेनिज्म बनाना, ताकि लोकल फैसले बड़े मकसद के साथ कम्पैटिबल हों।

सेंट्रल स्ट्रेटेजी एक ऐसा मॉडल बनाना है जिसमें इंसानी नज़दीकी तुरंत की ज़रूरतों को पूरा करे, जबकि इलाकों के बीच कोऑपरेशन स्ट्रक्चरल रिस्पॉन्स को सपोर्ट करे।

गवर्नेंस का भविष्य कई लेवल पर इंसानी नज़दीकी, इलाके की एफिशिएंसी और स्ट्रेटेजिक कोऑपरेशन को एक करने की काबिलियत पर निर्भर करता है। लोकल ऑटोनॉमी आबादी की असली ज़रूरतों के लिए तेज़ी से और ज़्यादा सही रिस्पॉन्स देती है, जबकि नेटवर्क इंटीग्रेशन अकेलेपन से बचाता है और रिसोर्स और बेस्ट प्रैक्टिस की शेयरिंग पक्का करता है। यह मॉडल लोगों की भागीदारी को मज़बूत करता है, एडमिनिस्ट्रेटिव एफिशिएंसी को बेहतर बनाता है, और सोशल इनोवेशन को बढ़ावा देता है, क्योंकि समाधान नीचे से ऊपर तक निकल सकते हैं और दूसरे समुदायों में भी अपनाए जा सकते हैं।

इंटीग्रेटेड ऑटोनॉमस कम्युनिटीज़ एक नए तरह के सोशल ऑर्गनाइज़ेशन को दिखाती हैं जो लोकल पहचान और बड़े पैमाने पर सहयोग को मिलाने में सक्षम हैं। भविष्य के शासन के लिए ज़्यादा फ्लेक्सिबल, पार्टिसिपेटरी और इलाके के हिसाब से इंटेलिजेंट स्ट्रक्चर की ज़रूरत होती है। सेंट्रलाइज़्ड मॉडल पर बने रहने का मतलब है इनएफिशिएंसी को लंबा खींचना। ज़्यादा लचीले और इंसानी समाजों के लिए ऑटोनॉमस और कनेक्टेड कम्युनिटी नेटवर्क की ओर बढ़ना एक स्ट्रेटेजिक ज़रूरत बन गई है।

10. परिवार, कम्युनिटी और शहर

असल में एक समाज को क्या बनाए रखता है: बड़े इंस्टीट्यूशन या घर, सड़क और शहर के बीच बने इंसानी रिश्ते? सोशल लाइफ की ठोस नींव इस बहस के सेंटर में है। किसी भी पॉलिटिकल या इकोनॉमिक स्ट्रक्चर से पहले, इन तीन जगहों पर वैल्यू, सिक्योरिटी, अपनापन और पहचान बनती है। जब इनमें से कोई एक पिलर कमजोर होता है, तो पूरे सोशल ताने-बाने पर इसका असर पड़ता है।

आजकल के हालात में, लोगों और जिन जगहों पर वे रहते हैं, उनके बीच एक बढ़ता हुआ डिसकनेक्शन है। परिवारों को बिखरी हुई दिनचर्या का सामना करना पड़ता है, कम्युनिटी एक साथ रहने के बंधन खो देती हैं, और शहर ज़्यादा काम के तो होते हैं, लेकिन कम इंसानी होते जाते हैं। सोशल आइसोलेशन, शहरी इनसिक्योरिटी, लोकल एकजुटता का कमजोर होना, और कलेक्टिव रेफरेंस का खत्म होना आम बात है। परिवार जिस तरह से अपनी कम्युनिटी और शहर

से जुड़ते हैं, उसका असर एजुकेशन, मेंटल हेल्थ, मोबिलिटी, काम और लाइफ की क्वालिटी पर पड़ता है।

आजकल के मॉडल के साथ प्रॉब्लम इंसानी एक साथ रहने के बेसिक लेवल के बीच बढ़ते डिसकनेक्शन में है। इसका कारण सोशल और शहरी मॉडल हैं जो प्रोडक्टिविटी, विस्थापन, आर्थिक सर्कुलेशन और खपत को प्राथमिकता देते हैं, जिससे साथ रहने, मिलने-जुलने और आपसी देखभाल को नुकसान होता है। शहरों को काफी हद तक सामान, गाड़ियों और काम के आने-जाने के लिए डिज़ाइन किया गया है, लेकिन ज़रूरी नहीं कि इंसानी रिश्ते बनाने के लिए। इसका नतीजा यह है कि परिवार और समुदाय के रिश्ते धीरे-धीरे कमज़ोर होते जा रहे हैं। इसका आखिरी असर सामाजिक रूप से बिखरे हुए शहरों का बनना है, जिसमें लोग शारीरिक रूप से पास रहते हैं लेकिन भावनात्मक रूप से दूर रहते हैं।

यह दरार माता-पिता और बच्चों को अलग करने वाले लंबे आने-जाने, परिवार के साथ बातचीत के लिए समय की कमी, पड़ोसियों के मिलने की जगहों में कमी और शहरी माहौल के आने-जाने की जगह में बदलने में दिखती है, न कि अपनेपन की। इस बिखराव की कीमत वे लोग चुकाते हैं जो शहरी लय की थकान से जूझ रहे परिवार, मतलब की बातचीत से वंचित बच्चे, अलग-थलग बुज़ुर्ग लोग और ऐसे समुदाय हैं जो आपसी मदद की अपनी क्षमता खो देते हैं। दुख अकेलेपन, मानसिक बीमारी, गुमनामी की भावना और सोशल प्रोटेक्शन नेटवर्क की बढ़ती कमज़ोरी के रूप में दिखाई देता है। जब शहर कम्युनिटी लाइफ का हिस्सा बनना बंद कर देता है, तो अपनेपन का एहसास कमज़ोर हो जाता है और सोशल कोऑपरेशन की क्षमता कम हो जाती है। इसका नतीजा एक ऐसा समाज होता है जिसमें इंसान खुद को लोगों से घिरा हुआ पाता है, लेकिन असली जुड़ाव से दूर रहता है। यह बिखराव असुरक्षा, सोशल बेपरवाही और खुद रहने वालों के बीच भरोसे की कमी को बढ़ावा देता है। शहरी जगह, कलेक्टिव लाइफ को मज़बूत करने के बजाय, अकेलापन और गायब होना पैदा करने लगती है।

एक नए तरीके की ज़रूरत है जो परिवार, कम्युनिटी और शहर को फिर से जोड़े। इस बदलाव का पहला कदम इकोनॉमिक या लॉजिस्टिक इंडिकेटर्स के बजाय, ठोस इंसानी अनुभव के आधार पर अर्बन प्लानिंग पर फिर से सोचना है। प्रैक्टिकल तौर पर, इसका मतलब है ऐसे पड़ोस बनाना जहाँ ज़रूरी सर्विस, स्कूल, हेल्थ, ग्रीन एरिया, लोकल कॉमर्स और सोशल इंटरेक्शन के लिए जगहों तक आसानी से पहुँचा जा सके, ज़्यादा ट्रैवल कम किया जा सके और कम्युनिटी के सदस्यों के बीच रोज़ाना मौजूदगी को बढ़ावा दिया जा सके। इस प्रपोज़ल में शहरों को कम्युनिटी

लाइफ का हिस्सा मानने की बात है। इसका मतलब है ज़्यादा इंटीग्रेटेड पब्लिक स्पेस बनाना जैसे कि चौक, कम्युनिटी सेंटर, आराम की जगहें, कल्चरल सुविधाएँ और सेफ़ सर्कुलेशन कॉरिडोर जो अचानक मिलने-जुलने और लगातार इंटरेक्शन को बढ़ावा दे सकें। इसके साथ ही, पब्लिक पॉलिसी को लोकल कम्युनिटी की पहल को बढ़ावा देना चाहिए, जैसे पड़ोसियों के बीच सपोर्ट नेटवर्क, इंटरजेनरेशनल प्रोग्राम, पड़ोस की कोऑपरेटिव और पार्टिसिपेटरी सिक्योरिटी एक्शन। इस मॉडल में, परिवार को कलेक्टिव लाइफ के साथ जुड़े एक कोर के तौर पर फिर से रखा जाना चाहिए, न कि उससे अलग किया जाना चाहिए। इसका मतलब है ऐसी पॉलिसी को मज़बूत करना जो काम और फैमिली लाइफ में तालमेल बिठाएं, केयर सर्विस को बढ़ाएं, बच्चों और बुज़ुर्गों को सपोर्ट करें, और शहरी जगहों के लिए ऐसे हालात बनाएं जिससे लंबे समय तक चलने वाले रिश्ते बन सकें। शहर को फिर से जीवन की जगह बनने की ज़रूरत है, न कि सिर्फ़ घूमने-फिरने की जगह।

यह साफ़ है कि इस बदलाव का शहरी मॉडल में विरोध होगा, जो रियल एस्टेट मार्केट, मास ट्रांज़िट के लॉजिक और इकोनॉमिक प्रोडक्टिविटी से बहुत ज़्यादा चलते हैं। यह विरोध शहरों के बेतरतीब फैलाव, शहरी ज़मीन की सट्टेबाज़ी में कीमत बढ़ने और रोज़मर्रा की ज़िंदगी की क्वालिटी पर इकोनॉमिक फ्लो को प्राथमिकता देने से दिखता है। बड़े रियल एस्टेट इंटरेस्ट, इंफ्रास्ट्रक्चर सेक्टर और एडमिनिस्ट्रेटिव स्ट्रक्चर, जो सिर्फ़ ग्रोथ और सर्कुलेशन से शहरी सफलता को मापने के आदी हैं, किसी भी कम्युनिटी रीओरिएंटेशन को एफिशिएंसी और डेवलपमेंट में रुकावट के तौर पर पेश करते हैं। कई मामलों में, शहरी जगह को ज़िंदगी के स्ट्रक्चर के तौर पर पहचाने जाने से पहले एक इकोनॉमिक एसेट माना जाता है।

असली बदलाव के लिए पहला कदम लोकल काउंसिल, ज़रूरी पब्लिक हियरिंग, कम्युनिटी फोरम और आस-पड़ोस पर फोकस करके पार्टिसिपेटरी बजटिंग के ज़रिए अर्बन प्लानिंग प्रोसेस में लोगों की भागीदारी को मज़बूत करना है। जब परिवार और कम्युनिटी मोबिलिटी, रहने की जगह, सुरक्षा, घर और आस-पास की सर्विसेज़ के बारे में फ़ैसला करना शुरू करते हैं, तो शहर ऊपर से थोपा गया डिज़ाइन नहीं रह जाता और असली इंसानी ज़रूरतों को दिखाने लगता है। अगला बदलाव इंस्टीट्यूशनल लेवल पर होना चाहिए: आस-पड़ोस में कम्युनिटी सेंटर बनाना, पब्लिक लिविंग एरिया को बढ़ाना, मिक्स्ड लैंड यूज़ को बढ़ावा देना, ज़रूरी सर्विसेज़ का डीसेंट्रलाइज़ेशन और लोकल कॉमर्स को मज़बूत करना। हमें हाउसिंग, काम, स्कूल, हेल्थ और सोशल इंटरेक्शन को एक-दूसरे के करीब लाना होगा, थका देने वाले आने-जाने को कम करना होगा और परिवार और कम्युनिटी के सोशल टाइम को वापस लाना होगा।

किसी समाज की क्वालिटी इस बात से मापनी होगी कि उसके परिवार कैसे रहते हैं, उसकी कम्युनिटीज़ एक-दूसरे को कैसे सपोर्ट करती हैं और उसके शहर उनका कैसे स्वागत करते हैं। इस कनेक्शन को फिर से बनाना सिर्फ़ एक शहरी या सोशल मुद्दा नहीं है, बल्कि कलेक्टिव फ्यूचर के लिए एक स्ट्रक्चरल ज़रूरत है। जहाँ शहर कम्युनिटी से फिर से जुड़ता है और कम्युनिटी परिवार को मज़बूत करती है, वहाँ एक ज़्यादा इंसानी और टिकाऊ सिविलाइज़ेशन के लिए एक मज़बूत नींव रखी जाती है।

11. लीडर – वे जिन्हें पावर की चाहत नहीं होती

समाज को कौन लीड करे: वे जो किसी भी कीमत पर पावर चाहते हैं या वे जो ड्यूटी और ज़िम्मेदारी की वजह से इसे अपनाते हैं? यह चैप्टर आज के पॉलिटिकल और इंस्टीट्यूशनल लॉजिक का एक गहरा उलटा प्रपोज़ल देता है। लीडरशिप को पर्सनल एम्बिशन से जोड़ने के बजाय, यह प्रपोज़ल सच्चे लीडर को ऐसे व्यक्ति के तौर पर दिखाता है जो लीडरशिप इसलिए स्वीकार करता है क्योंकि वह कलेक्टिव ज़रूरत को समझता है, न कि इसलिए कि वह प्रेस्टीज, कंट्रोल या एडवांटेज चाहता है।

आज की दुनिया में, लीडरशिप और असर, विज़िबिलिटी और इंस्टीट्यूशनल डॉमिनेंस के संघर्ष के बीच एक कनेक्शन है। अलग-अलग क्षेत्रों में, कमांड की पोजीशन तक पहुँच आगे बढ़ने के इंडिविजुअल प्रोजेक्ट्स से ड्रिवन होती है। फ़ैसले पावर बनाए रखने, इमेज बनाए रखने या प्राइवेट इंटरेस्ट से गाइडेड हो जाते हैं, जो सीधे पब्लिक मैनेजमेंट, इंस्टीट्यूशनल ट्रस्ट और आम भलाई की क्वालिटी पर असर डालते हैं।

मौजूदा सिस्टम के साथ प्रॉब्लम यह है कि यह अपने लीडर्स को कैसे चुनता है और उन्हें रिवॉर्ड देता है। पब्लिक रिस्पॉन्सिबिलिटी, काबिलियत और मोरल बैलेंस की भावना से ड्रिवन लोगों को फेवर करने के बजाय, सिस्टम उन लोगों को रिवॉर्ड देता है जिनका मेन मोटिवेशन कमांड की चाहत है। इसका कारण पॉलिटिकल, इंस्टीट्यूशनल और ऑर्गेनाइज़ेशनल स्ट्रक्चर हैं जो एम्बिशन, जीतने की बातों, पब्लिक में दिखने और स्ट्रेटेजिक मोबिलाइज़ेशन की कैपेसिटी को वैल्यू देते हैं। इस लॉजिक के तहत, जो लोग पावर की बहुत ज़्यादा इच्छा रखते हैं, वे ज़्यादा आसानी से ऊपर उठते हैं, और ज़रूरी नहीं कि वे लोग जो कलेक्टिव के फायदे के लिए इसका इस्तेमाल करने के लिए सबसे अच्छे से तैयार हों।

मौजूदा मॉडल का नतीजा यह है कि लीडर्स समाज के लिए ठोस नतीजों के बजाय परमानेंटनेस, असर और इमेज बचाने को लेकर ज़्यादा फिक्रमंद हैं। इसका असर इंस्टीट्यूशन्स का कमज़ोर होना और लीडरशिप और पब्लिक इंटरेस्ट के बीच धीरे-धीरे बढ़ती दूरी है। जब पावर अपने आप में एक मकसद बन जाती है, तो लीडरशिप समाज की सेवा करना बंद कर देती है और खुद कमांड स्ट्रक्चर की सेवा करने लगती है। यह पोजीशन एक ज़रिया बनना बंद कर देती है और एक पहचान, पॉलिटिकल एसेट या खुद को बचाने का प्लेटफॉर्म बन जाती है।

इस गड़बड़ी के गहरे इंसानी और इंस्टीट्यूशनल असर होते हैं। इसकी कीमत वे नागरिक चुकाते हैं जो असली ज़रूरतों के बजाय पॉलिटिकल कैलकुलेशन, अलायंस बनाए रखने या पर्सनल इंटरेस्ट से गाइडेड फैसले लेते हैं। यह दर्द पब्लिक रिसोर्स के मिसमैनेजमेंट, संकटों पर धीरे जवाब देने, इंस्टीट्यूशनल भरोसे की कमी, और नाकाबिलियत, चूक, या पावर के गलत इस्तेमाल से होने वाली सीधी तकलीफ़ में दिखता है। बिना इंफ्रास्ट्रक्चर वाले हॉस्पिटल, नज़रअंदाज़ किए गए स्कूल, ठीक से लागू न की गई पब्लिक पॉलिसी, और फ़ैसले लेने के घमंड से बढ़े संकट, ये सब लीडरशिप की कमज़ोर इंसानी कीमत के पक्के उदाहरण हैं। इस मॉडल से फ़ायदा उठाने वाले वही ग्रुप हैं जो पावर के आस-पास घूमते हैं: पॉलिटिकल एलीट, बंद पार्टी स्ट्रक्चर, असर के नेटवर्क, और ऐसे एक्टर जिन्हें अंदरूनी सपोर्ट पर निर्भर लीडर की लगातार मौजूदगी से फ़ायदा होता है। इंस्टीट्यूशनल लॉजिक इस साइकिल को मज़बूत करता है, मेरिट और सोशल कमिटमेंट की कीमत पर स्ट्रेटेजिक वफ़ादारी और खुद को प्रमोट करने की क्षमता को इनाम देता है।

प्रस्ताव एक ऐसा लीडरशिप मॉडल बनाने का है जो नैतिक काम और पहचानी गई काबिलियत से चलता हो। इसमें उन लोगों को महत्व देना शामिल है जो पावर को इच्छा की चीज़ के तौर पर नहीं चाहते, बल्कि इसे कलेक्टिव के फ़ायदे के लिए एक टेम्परारी ज़िम्मेदारी के तौर पर लेते हैं। इस बदलाव का पहला कदम लीडरशिप पोजीशन पर सिलेक्शन, इवैल्यूएशन और रिटेंशन के तरीकों में बदलाव होना चाहिए, जिसमें ट्रांसपेरेंट क्राइटेरिया हों जो टेक्निकल कैपेसिटी, पब्लिक कमिटमेंट का इतिहास, इमोशनल बैलेंस और एथिकल इंटेग्रिटी को प्रायोरिटी दें। इसका मतलब है ज़्यादा सख़्त परफॉर्मेंस इवैल्यूएशन प्रोसेस, परमानेंट अकाउंटेबिलिटी मैकेनिज्म, टर्म लिमिट और कॉलेजियल स्ट्रक्चर बनाना जो बहुत ज़्यादा पर्सनलिज़्म को कम करें। इस मॉडल में, लीडरशिप को एक सर्विस फंक्शन के तौर पर समझा जाना चाहिए, न कि एक प्रिविलेज्ड पोजीशन के तौर पर। फोकस सोशल रिज़ल्ट, डिसीजनल क्वालिटी और भरोसे पर बनी लेजिटिमेसी पर होना चाहिए, न कि सिर्फ़ पोजीशन जीतने या बनाए रखने की काबिलियत पर।

किसी भी बदलाव का बहुत ज़्यादा विरोध होता है, खासकर उन सिस्टम से जो पावर के एक जगह जमा होने और आगे बढ़ने के लिए कॉम्पिटिटिव एम्बिशन को अहमियत देने के आदी हैं। ज़्यादातर पॉलिटिकल, कॉर्पोरेट और इंस्टीट्यूशनल स्ट्रक्चर में, लीडरशिप तक पहुंच ऐसे तरीकों से होती है जो विज़िबिलिटी, कॉम्पिटिशन और कमांड में परमानेंस को इनाम देते हैं। इसलिए, सिस्टम उन प्रोफाइल को ज़्यादा पसंद करता है जो पावर हासिल करने पर ज़्यादा ध्यान देते हैं, न कि उसे इस्तेमाल करने की ज़िम्मेदारी पर। बदलाव का विरोध बंद हायरार्की, असर के अंदरूनी नेटवर्क, पॉलिटिकल पर्सनलिज़्म और ऑर्गेनाइज़ेशनल कल्चर को बनाए रखने में है जो लीडरशिप को बिना सवाल वाले अधिकार से कन्फ्यूज़ करते हैं।

बदलाव के लिए लीडरशिप के कॉन्सेप्ट को ही कल्चर के हिसाब से फिर से डिफाइन करने की ज़रूरत है। समाज को लीडरशिप को थोपने, करिश्मा या दबदबे की चाहत से जोड़ना बंद करना होगा, और इसे सुनने, मतभेदों को जोड़ने, ज़िम्मेदारी लेने और लिमिट स्वीकार करने की काबिलियत में पहचानना शुरू करना होगा। जब ज़्यादातर लोग देखभाल, काबिलियत और जवाबदेही के एथिक्स को महत्व देने लगते हैं, तो सिस्टम सोशल सेल्फ-प्रिजर्वेशन पर ध्यान देने वाले प्रोफाइल के आगे हारना शुरू कर देता है। यह बदलाव लीडरशिप ट्रेनिंग और सिलेक्शन के प्रोसेस के अंदर भी होना चाहिए। इसका मतलब है ऐसे इंस्टीट्यूशनल सिस्टम बनाना जो कम्युनिटी, पब्लिक सर्विस, एजुकेशन, साइंस और टेरिटोरियल मैनेजमेंट में ठोस एक्शन से सही रिप्रेजेंटेटिव की एंट्री को बड़ा करें। ज़्यादा ट्रांसपेरेंसी, ऑब्जेक्टिव इवैल्यूएशन क्राइटेरिया, मैनेजर के लिए एथिकल ट्रेनिंग, जॉब रोटेशन और कॉलेजिएट काउंसिल को मज़बूत करने वाले मैंडेट कमांड के पर्सनल कंसंट्रेशन को कम कर सकते हैं। सोशल प्रेशर को ऐसे स्ट्रक्चर में बदलने की ज़रूरत है जो पावर पर बहुत ज़्यादा कब्ज़ा होने से रोकें, सिटिज़न की निगरानी को बढ़ाएँ और मिलकर फ़ैसले लेने को महत्व दें। हमें लीडर को एकदम सेंटर मानने के लॉजिक को कम करना होगा और लीडरशिप को एक सर्विस फ़ंक्शन के तौर पर मज़बूत करना होगा। इसका मकसद सिस्टम को उन लोगों को ऑटोमैटिकली चुनने से रोकना है जो सबसे ज़्यादा लीड करना चाहते हैं।

समाज सिर्फ़ रिसोर्स की कमी से ही नहीं टूटते, बल्कि ऐसे लीडर की कमी से भी टूटते हैं जो कमांड की इच्छा से ऊपर आम भलाई को रख सकें। सच्चा लीडर वह नहीं है जो सबसे ज़्यादा पावर चाहता है, बल्कि वह है जो इसे ज़िम्मेदारी से और लिमिट में इस्तेमाल करने के महत्व को सबसे अच्छी तरह समझता है। जो लीडर पावर नहीं चाहते, वे अपनी भूमिका ज़्यादा ज़िम्मेदारी के साथ निभाते हैं, परमानेंट होने से कम लगाव रखते हैं और स्ट्रक्चरल नतीजों पर ज़्यादा ध्यान देते

हैं। यह रवैया लोगों का भरोसा बढ़ाता है, फैसलों की क्वालिटी को बेहतर बनाता है, और संस्थाओं के बहुत ज़्यादा पर्सनलाइज़ेशन का खतरा कम करता है। यह एक ज़्यादा मैच्योर पॉलिटिकल कल्चर को बढ़ावा देता है, जिसमें पावर सेवा का एक ज़रिया है, न कि सुपीरियरिटी का सिंबल। किसी समाज की क्वालिटी उसे लीड करने वालों की क्वालिटी पर निर्भर करती है। जब पावर सबसे ज़्यादा एम्बिशियस लोगों को अट्रैक्ट करना बंद कर देती है और सबसे ज़्यादा तैयार और अवेयर लोगों को बुलाने लगती है, तो ज़्यादा लेजीटिमेट और सस्टेनेबल गवर्नेंस का रास्ता खुल जाता है। संस्थाओं का भविष्य इस बात से तय नहीं होगा कि कौन सबसे ज़्यादा कमांड करना चाहता है, बल्कि इस बात से तय होगा कि लीड करने की अहमियत को सबसे अच्छे से कौन समझता है।

12. शिक्षा और सबकी आज़ादी

असल में किसी समाज का भविष्य क्या तय करेगा: जमा किया हुआ पैसा या दुनिया को समझने, बनाने और बदलने की काबिलियत? यह थीम एक मुख्य बात से निकलती है: कोई भी सभ्यता ज्ञान को अपनी प्राथमिकताओं के केंद्र में रखे बिना खुद को सही, नए और लंबे समय तक चलने वाले तरीके से बनाए नहीं रख सकती। शिक्षा, किसी एक की तरक्की के एक ज़रिया से कहीं ज़्यादा, वह नींव है जिस पर आज़ादी, तरक्की और सबकी सोच बनती है।

आज, ज्ञान आर्थिक, वैज्ञानिक और सामाजिक विकास के मुख्य कारणों में से एक बन गया है। असल में, जो समाज शिक्षा में निवेश करते हैं, वे ज़्यादा प्रोडक्टिविटी, टेक्नोलॉजिकल इनोवेशन, बेहतर क्वालिटी ऑफ़ लाइफ़ और ज़्यादा स्थिर संस्थाएँ दिखाते हैं। साथ ही, शिक्षा और जानकारी तक असमान पहुँच सामाजिक मतभेदों को और गहरा करती है, जिससे बचपन से ही मौके कम मिलते हैं। शिक्षा, आज की चुनौतियों का सामना करने में इनकम, सेहत, नागरिक भागीदारी और ज़रूरी काबिलियत पर असर डालती है।

मौजूदा समस्या शिक्षा को स्ट्रक्चरल तौर पर कम आंकने में है। इसका कारण ऐसे सिस्टम हैं जो इसे एक सेकेंडरी खर्च, एक शॉर्ट-टर्म काम का ज़रिया, या सिर्फ़ कुछ खास ग्रुप्स के लिए एक खास खास अधिकार मानते हैं। इंसानी आज़ादी और समाज में बदलाव लाने की काबिलियत की बुनियाद के तौर पर पहचाने जाने के बजाय, ज्ञान को तुरंत बाज़ार के फ़ायदों, छोटे पॉलिटिकल साइकिल या बजट की रुकावटों के आगे दबा दिया जाता है, जो इसे किनारे पर रख देते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि पहुँच, क्वालिटी और बनाए रखने में असमानताएँ लगातार बढ़ती रहती हैं। आखिर में, हमारे समाज ऐसे बनते हैं जो मुश्किल संकटों का सामना करने के लिए कम तैयार होते

हैं, नए-नए काम करने में कम काबिल होते हैं, और बाहरी निर्भरता के प्रति ज़्यादा कमज़ोर होते हैं। इसकी कीमत वे बच्चे चुकाते हैं जो बिना किसी ढांचे वाले स्कूलों में बड़े होते हैं, वे युवा जो मौकों की कमी की वजह से अपने भविष्य की संभावनाओं को सीमित देखते हैं, और वे पूरे समुदाय जो साइंटिफिक, टेक्नोलॉजिकल और कल्चरल प्रोडक्शन के सेंटर्स से बाहर रह जाते हैं। एजुकेशनल असमानता अच्छी क्वालिटी की शिक्षा पाने में मुश्किल, स्कूल छोड़ने, काम की निरक्षरता और डिजिटल और साइंटिफिक दुनिया से बाहर रहने के रूप में दिखती है। लंबे समय में, यह कमी इनकम की कमी, खतरनाक काम और सोशल मोबिलिटी में भारी कमी के रूप में सामने आती है। इसका असर इंस्टीट्यूशनल और स्ट्रेटेजिक भी होता है। जो समाज ज्ञान को प्राथमिकता नहीं देते, वे बाहर से बनी टेक्नोलॉजी पर निर्भर हो जाते हैं, लोकल बदलाव की क्षमता के बिना समाधान इंपोर्ट करते हैं, और उन संकटों के प्रति कमज़ोर रहते हैं जिनके लिए टेक्निकल जवाब और क्रिटिकल थिंकिंग की ज़रूरत होती है। इस स्ट्रक्चर से फ़ायदा उठाने वाले वे सेक्टर हैं जिन्हें ज्ञान में अंतर बनाए रखने से फ़ायदा होता है, चाहे वह आर्थिक एकाग्रता, टेक्नोलॉजिकल निर्भरता, या सामाजिक ऊँच-नीच को बनाए रखने के ज़रिए हो। स्ट्रक्चरल अज्ञानता सत्ता को बनाए रखने का एक ज़रिया बन जाती है।

हमें शिक्षा को सामूहिक जीवन की सबसे बड़ी वैल्यू के तौर पर फिर से स्थापित करना होगा। इस बदलाव का पहला कदम शिक्षा, विज्ञान और ज़रूरी ट्रेनिंग को सेंट्रल और परमानेंट इन्वेस्टमेंट के तौर पर पहचानना है, न कि लगातार कटौती के अधीन आकस्मिक खर्च के तौर पर। प्रैक्टिकल तौर पर, इसके लिए बेसिक, टेक्निकल, हायर एजुकेशन और साइंटिफिक रिसर्च के लिए स्थिर और प्रोग्रेसिव फंडिंग की ज़रूरत है, जिसमें विस्तार और क्वालिटी के लक्ष्य साफ़ तौर पर तय हों। हमें स्कूल बेस से लेकर रिसर्च और स्पेशलाइज़ेशन के एडवांस लेवल तक आसान ट्रेनिंग का एक लगातार सिस्टम बनाना होगा। इसका मतलब है एजुकेशनल इंफ्रास्ट्रक्चर का विस्तार करना, टेक्नोलॉजी और कनेक्टिविटी तक सबकी पहुँच की गारंटी देना, अच्छी सैलरी और लगातार ट्रेनिंग के ज़रिए टीचिंग प्रोफेशनल्स को महत्व देना, साथ ही यूनिवर्सिटी, रिसर्च सेंटर और इनोवेशन नेटवर्क को मज़बूत करना। एजुकेशन को सिर्फ़ इकोनॉमिक इन्क्लूजन के एक तरीके के तौर पर ही नहीं, बल्कि क्रिटिकल सिटिज़नशिप और कलेक्टिव ऑटोनॉमी की नींव के तौर पर भी समझा जाना चाहिए। एक ऐसे सोशल कल्चर को बढ़ावा देना ज़रूरी हो जाता है जो नॉलेज को लेजीटिमेट पावर के मेन रूप के तौर पर पहचानता हो। एक इंसाफ़ वाले समाज में, इज़्ज़त चीज़ों को जमा करने से नहीं, बल्कि समझने, बनाने, सिखाने और सबकी भलाई में योगदान देने की

काबिलियत से मिलनी चाहिए। इस मॉडल में, नॉलेज एक प्रिविलेज नहीं रह जाता और सोशल लाइफ़ का एक ज़रूरी इंफ्रास्ट्रक्चर बन जाता है।

इस बदलाव का उन सिस्टम में विरोध होता है जो शिक्षा को एक सेकेंडरी वैरिएबल मानते हैं या ज्ञान तक पहुँच को सामाजिक भेदभाव के एक तरीके के तौर पर रोकते हैं। यह विरोध कई तरीकों से दिखता है: लगातार कम फंडिंग, इंफ्रास्ट्रक्चर में इलाके के हिसाब से असमानता, टीचरों की वैल्यू कम करना, हायर एजुकेशन तक पहुँच में सिलेक्टिविटी, और सांस्कृतिक रुकावटों को बनाए रखना जो ज्ञान को एक खास अधिकार में बदल देती हैं। ज्ञान का इस्तेमाल आज़ादी के साधन के तौर पर नहीं, बल्कि सामाजिक जुड़ाव के लिए एक फिल्टर के तौर पर किया जाता है, जो मॉडर्न जातियों को फिर से बनाता है और सामूहिक मोबिलिटी को सीमित करता है। इसलिए, यह सिस्टम ज़्यादातर लोगों को असलियत को समझने और बदलने के लिए टूल्स तक पूरी पहुँच देने से रोककर स्ट्रक्चरल निर्भरता को बनाए रखता है।

पहला काम असली क्वालिटी के साथ, शुरुआती बचपन, बेसिक और टेक्निकल शिक्षा को यूनिवर्सल बनाना है, यह पक्का करते हुए कि शुरुआती पॉइंट किसी व्यक्ति की दिमागी किस्मत तय न करे। इसका मतलब है अच्छा इंफ्रास्ट्रक्चर, स्कूल में खाना, कनेक्टिविटी, लगातार टीचर ट्रेनिंग, और सीखने के सामान और माहौल तक बराबर पहुँच। जब ज़्यादातर लोग रोज़मर्रा की ज़िंदगी में ज़्यादा मौकों, ज़्यादा आज़ादी और ज़रूरी हिस्सेदारी के साथ ठोस असर देखते हैं, तो शिक्षा एक अधूरा वादा नहीं रहती और एक सामाजिक प्राथमिकता बन जाती है। इसके बाद, फ़ैसले लेने और बजट सिस्टम में बदलाव करना ज़रूरी है। इसका मतलब है कि शिक्षा को पब्लिक पॉलिसी का मुख्य हिस्सा बनाना, जिसमें ज़रूरी इन्वेस्टमेंट टारगेट हों, क्षेत्रीय असमानता कम हो, और यूनिवर्सिटी, टेक्निकल सेंटर और एप्लाइड रिसर्च का विस्तार हो। स्टूडेंट रिटेंशन प्रोग्राम, स्कॉलरशिप, हायर एजुकेशन का डीसेंट्रलाइज़ेशन, लोकल साइंस के लिए इंसेंटिव, और स्कूल, कम्युनिटी और प्रोडक्टिव सेक्टर के बीच इंटीग्रेशन जैसे एडवांसमेंट से ज्ञान तक पहुँच धीरे-धीरे ऐसी बन सकती है जिसे बदला नहीं जा सकता। लोगों के दबाव को मज़बूत एजुकेशनल काउंसिल, स्कूल के फ़ैसलों में कम्युनिटी की भागीदारी, रिसोर्स की निगरानी, और कानूनी फ्रेमवर्क में बदलना होगा जो शिक्षा को राज्य की परमानेंट प्रायोरिटी के तौर पर बचाए। हमें मुश्किलों की गुंजाइश कम करनी चाहिए और यह समझ बढ़ानी चाहिए कि शिक्षा कोई खर्च नहीं है, बल्कि एक सभ्य बनाने वाला इंफ्रास्ट्रक्चर है। हमें यह पक्का करना होगा कि हर ज़्यादा पढ़ी-लिखी पीढ़ी अगली पीढ़ी की आगे बढ़ने की क्षमता को और मज़बूत करे।

कोई भी समाज ज्ञान को अपने सामूहिक अस्तित्व के केंद्र में रखे बिना असली सॉवरेनिटी, स्थायी न्याय, या एक टिकाऊ भविष्य हासिल नहीं कर सकता। जहाँ शिक्षा को नज़रअंदाज़ किया जाता है, वहाँ निर्भरता बढ़ती है। जहाँ इसकी कद्र की जाती है, वहाँ आज़ादी की ठोस संभावना पैदा होती है। एजुकेशन तक सबकी पहुँच को आसान बनाने से, स्ट्रक्चरल असमानता कम होती है, इनोवेशन मज़बूत होता है, और आर्थिक, पर्यावरण और टेक्नोलॉजिकल संकटों पर समाज की प्रतिक्रिया की क्षमता बढ़ती है। इसके अलावा, ज़्यादा पढ़ी-लिखी आबादी पॉलिटिकल और कम्युनिटी लाइफ में ज़्यादा सोच-समझकर हिस्सा लेती है, जिससे संस्थाएँ ज़्यादा कानूनी और असरदार बनती हैं। ज्ञान, जब बांटा जाता है, तो सभी क्षेत्रों में विकास को कई गुना बढ़ा देता है। भौतिक दौलत खो सकती है, पॉलिटिकल स्ट्रक्चर को बदला जा सकता है, लेकिन जमा किया हुआ और शेयर किया गया ज्ञान किसी भी सभ्यता की सबसे बड़ी बदलाव लाने वाली ताकत बना रहता है। एजुकेशन को सबसे बड़ी वैल्यू देना सिर्फ़ एक स्ट्रेटेजिक चॉइस नहीं है, यह एक ज़्यादा आज़ाद, सही और ज़्यादा सस्टेनेबल भविष्य के लिए ज़रूरी शर्त है।

13. फ्री यूनिवर्सिटी

सबसे एडवांस्ड नॉलेज भी इकोनॉमिक, ज्योग्राफिकल और इंस्टीट्यूशनल रुकावटों से क्यों रुकी हुई है? यह टॉपिक आज की दुनिया की एक बड़ी उलझन के जवाब के तौर पर सामने आया है: जानकारी की भरमार और ग्लोबल कनेक्टिविटी के इस दौर में, अच्छी हायर एजुकेशन तक पहुंच अभी भी बहुत ज़्यादा असमान है। अगर नॉलेज सोशल बदलाव का सबसे बड़ा इंजन है, तो इसका सर्कुलेशन कुछ लोगों तक ही सीमित नहीं रह सकता।

आज के समय में, यूनिवर्सिटी साइंटिफिक प्रोडक्शन, प्रोफेशनल ट्रेनिंग और समाज के कल्चरल डेवलपमेंट में अहम भूमिका निभाती हैं। हालांकि, ज़्यादा लागत, बहुत ज़्यादा रोक लगाने वाले सिलेक्शन प्रोसेस और स्ट्रक्चरल असमानताएं आबादी के एक बड़े हिस्से को इस जगह तक पहुंचने से रोकती हैं। यूनिवर्सिटी तक पहुंच सोशल मोबिलिटी, टेक्नोलॉजिकल इनोवेशन, रिसर्च प्रोडक्शन और नागरिकों की क्रिटिकल कैपेसिटी पर असर डालती है। जब हायर एजुकेशन बंद हो जाती है, तो पूरा समाज डेवलपमेंट की अपनी क्षमता खो देता है।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या एलीटिज़्म और हायर एजुकेशन तक सीमित पहुंच का मेल है। इसका कारण फाइनेंशियल रिसोर्स, ज्योग्राफिकल लोकेशन, बहुत ज़्यादा सेलेक्टिविटी और इंस्टीट्यूशनल रुकावटों से बने एकेडमिक स्ट्रक्चर हैं जो एंट्री और रिटेंशन को रोकते हैं।

यूनिवर्सिटी, जिसे ज्ञान और सोशल मोबिलिटी बढ़ाने की जगह के तौर पर काम करना चाहिए, आखिर में पहले से मौजूद असमानताओं को ही पैदा करती है। इसका नतीजा यह होता है कि पढ़ाई के मौके पहले से ही खास ग्रुप्स में जमा हो जाते हैं, जिससे सामाजिक असमानताएं पैदा होती हैं और टैलेंट चुपचाप खत्म हो जाता है जो साइंस, इकॉनमी, कल्चर और पब्लिक लाइफ में योगदान दे सकता था।

इस मॉडल की कीमत वे युवा लोग चुकाते हैं जिनमें दिमागी ताकत तो बहुत ज़्यादा होती है, लेकिन उनके पास घूमने-फिरने, रहने की जगह, पढ़ाई का सामान या अच्छे इंस्टीट्यूशन तक पहुंचने के लिए पैसे नहीं होते। आस-पास के इलाके, जो बड़े यूनिवर्सिटी सेंटर्स से दूर होते हैं, जहां टैलेंट को अक्सर आगे बढ़ने का कोई रास्ता नहीं मिलता। परेशानी अच्छी राहों में रुकावट, पीढ़ियों की निराशा और असमानता के चक्र के बने रहने से होती है। जब कोई समाज आर्थिक या स्ट्रक्चरल रुकावटों की वजह से हायर एजुकेशन तक पहुंच को रोकता है, तो वह न सिर्फ लोगों को बाहर करता है, बल्कि खुद को भी सीमित कर लेता है। जो सिस्टम हायर नॉलेज पर रोक लगाता है, वह दिमागी तौर पर नया करने, साइंटिफिक इनोवेशन और मुश्किल संकटों का सामना करने की अपनी क्षमता को कम कर देता है। इस स्ट्रक्चर से फ़ायदा उठाने वाले वे ग्रुप हैं जिन्हें कल्चरल कैपिटल के जमावड़े, इंस्टीट्यूशनल प्रतिष्ठा और ज्ञान को सामाजिक भेदभाव के तरीके के तौर पर बनाए रखने से फ़ायदा होता है। जब यूनिवर्सिटी एलीट होती है, तो उसके खास अधिकार को फिर से पाने का ज़रिया बनने का खतरा रहता है, न कि आज़ादी का।

इस ज़रूरी बदलाव में ज्ञान की एंट्री, उसे बनाए रखने और बांटने के कई मॉडल के ज़रिए हायर एजुकेशन तक पहुंच को पूरी तरह से बढ़ाना शामिल है। इसके लिए आर्थिक रुकावटों को असरदार तरीके से कम करना, स्कॉलरशिप बढ़ाना, स्थिर पब्लिक फंडिंग, यूनिवर्सिटी आउटरीच प्रोग्राम और हाई-क्वालिटी डिजिटल हब को बढ़ाना ज़रूरी है। इस प्रस्ताव में खुले, इन-पर्सन और डिजिटल मॉडल बनाना शामिल है, जिसमें यूनिवर्सिटी का ज्ञान बड़े पैमाने पर, आसानी से और मिलकर बांटा जा सके। इसका मतलब है एकेडमिक कंटेंट का मुफ़्त प्रोडक्शन और शेयरिंग, ओपन डिजिटल लाइब्रेरी, पब्लिक हायर एजुकेशन प्लेटफ़ॉर्म, इंटर-इंस्टीट्यूशनल रिसर्च और साइंटिफिक सहयोग के ग्लोबल नेटवर्क। यूनिवर्सिटी में बनने वाला ज्ञान इंस्टीट्यूशनल सर्कल तक सीमित नहीं रहना चाहिए और सामाजिक विरासत बन जाना चाहिए।

सिर्फ़ मुफ़्त ट्यूशन से ज़्यादा, इसका मुख्य विचार यूनिवर्सिटी एजुकेशन का स्ट्रक्चरल डेमोक्रेटाइज़ेशन है। इसका मतलब है कि न सिर्फ़ एनरोलमेंट के लिए फ़ॉर्मल एक्सेस की गारंटी

देना, बल्कि रिटेंशन, साइकोसोशल सपोर्ट, टेक्नोलॉजिकल इंफ्रास्ट्रक्चर, और टीचिंग, रिसर्च और कम्युनिटी आउटरीच के बीच इंटीग्रेशन के लिए असली हालात भी सुनिश्चित करना। यूनिवर्सिटी को समाज के साथ बातचीत करने, ज्ञान के अलग-अलग रूपों को अपनाने और पब्लिक ट्रांसफ़ॉर्मेशन के लिए एक एक्टिव सेंटर के तौर पर काम करने की ज़रूरत है।

बदलाव का विरोध एकेडमिक स्ट्रक्चर से आएगा जो प्रेस्टीज, डिस्टिंक्शन और सोशल कैपिटल के रिप्रोडक्शन के सिंबल के तौर पर सेलेक्टिविटी के आदी हैं। यह न केवल फॉर्मल एक्सेस में बल्कि कल्चरल, इकोनॉमिक और सिंबॉलिक फिल्टर के मेंटेनेंस में भी दिखता है जो हायर एजुकेशन को क्लास का मार्कर बना देते हैं। यूनिवर्सिटी इंटेलेक्चुअल इमैन्सलिब्रेशन के लिए एक जगह नहीं रह जाती है और सोशल लेजिटिमेसी के एक मैकेनिज्म के तौर पर काम करना शुरू कर देती है, प्रिविलेज के हिस्टोरिकल नेटवर्क, मौकों के कंसंट्रेशन और नॉलेज के लिमिट्ड सर्कुलेशन को बचाती है। एक्सक्लूसिविटी का डिफेंस एक्सीलेंस का सिनोनिम माना जाएगा, जब असल में यह अपनेपन में एक बैरियर के तौर पर काम करता है।

ट्रांसफॉर्मेशन हायर एजुकेशन तक एक्सेस को बढ़ाने से शुरू होना चाहिए, जिसमें जगहों, स्कॉलरशिप, रिटेंशन प्रोग्राम, ईवनिंग क्लास, डीसेंट्रलाइज्ड सेंटर और यूनिवर्सिटी और लोकल कम्युनिटी के बीच इंटीग्रेशन को बढ़ाया जाएगा। जब ज़्यादातर आबादी यूनिवर्सिटी को एक पॉसिबल और एक्सेसिबल जगह के तौर पर देखना शुरू कर देती है, तो यह हिस्टोरिकल सोच टूट जाती है कि हायर नॉलेज कुछ ही लोगों का है। दूसरा स्टेज एकेडमिक डिसीजन-मेकिंग स्ट्रक्चर के अंदर होना चाहिए। इसका मतलब है यूनिवर्सिटी गवर्नेंस को धीरे-धीरे डेमोक्रेटाइज़ करना, काउंसिल, बोर्ड और स्ट्रेटेजिक फैसलों में स्टूडेंट्स, फैकल्टी, स्टाफ और सोशल रिप्रेजेंटेटिव की भागीदारी बढ़ाना। बजट में ट्रांसपेरेंसी, लीडर्स का खुला चुनाव, यूनिवर्सिटी एक्सटेंशन प्रोग्राम को मजबूत करना, और एडमिशन और रिटेंशन के लिए एक्सक्लूजनरी क्राइटेरिया की समीक्षा करने से इंस्टीट्यूशन खुद में कम बंद हो जाता है।

इसके बाद, यूनिवर्सिटी को समाज के कलेक्टिव प्रोजेक्ट में इंटीग्रेट करना बहुत ज़रूरी हो जाता है। सोशल प्रेशर को पब्लिक पॉलिसी में बदलने की ज़रूरत है जो टीचिंग, रिसर्च और आउटरीच को आबादी की असली ज़रूरतों से जोड़ती हैं: हेल्थ, टेक्नोलॉजी, रीजनल डेवलपमेंट, कल्चर, सस्टेनेबिलिटी और सोशल इनोवेशन। हर नई तरक्की से यूनिवर्सिटी और रोज़मर्रा की ज़िंदगी के बीच की दूरी कम होनी चाहिए, जिससे हायर एजुकेशन एम्पावरमेंट के लिए एक पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर में बदल जाए। एक समाज जो भविष्य, सॉवरेनिटी और न्याय चाहता है, उसे यूनिवर्सिटी

को सच में एक फ्री, एक्सेसिबल और सोशली इंटीग्रेटेड जगह बनाने की ज़रूरत है। फ्री यूनिवर्सिटी क्वालिफाइड प्रोफेशनल्स की ट्रेनिंग को बढ़ाती हैं, साइंटिफिक इनोवेशन को मजबूत करती हैं, और ज़्यादा सोशल मोबिलिटी को बढ़ावा देती हैं।

अलग-अलग सोशल, कल्चरल और टेरिटोरियल बैकग्राउंड को इंटीग्रेट करके, यूनिवर्सिटी एकेडमिक प्रोडक्शन को ज़्यादा अलग-अलग नज़रिए से बेहतर बनाती हैं जो समाज की असली ज़रूरतों के ज़्यादा करीब होते हैं। इसका नतीजा एक ज़्यादा डायनैमिक, सबको साथ लेकर चलने वाला इंटेलेक्चुअल इकोसिस्टम है जो कलेक्टिव डेवलपमेंट से जुड़ा है। फ्री यूनिवर्सिटीज़ को बचाना इंसानियत के अपने भविष्य को बढ़ाने का बचाव करना है। कोई भी समाज अपनी पूरी क्षमता तक नहीं पहुँच सकता जब तक हायर एजुकेशन बनावटी रुकावटों से बंधी रहती है। यूनिवर्सिटी को डेमोक्रेटाइज़ करना सिर्फ़ एजुकेशन तक पहुँच बढ़ाने के बारे में नहीं है, यह उन लाखों दिमागों की बदलाव लाने की क्षमता को बाहर लाने के बारे में है जो आज भी हाशिए पर हैं। ज्ञान, जब फ्री होता है, तो कुछ लोगों की सेवा करना बंद कर देता है और सभी की किस्मत बनाने लगता है।

पार्ट III — रीडिस्ट्रिब्यूटिव सिस्टम

14. टैक्स सिस्टम – विकेंद्रीकृत सरकार

जिन कम्युनिटी को सबसे ज़्यादा इन्वेस्टमेंट की ज़रूरत होती है, उन्हें सबसे कम रिटर्न क्यों मिलता है? टैक्स का काम सिर्फ़ रेवेन्यू इकट्ठा करना ही नहीं है, बल्कि असमानताओं को ठीक करना, आम लोगों की भलाई के लिए फाइनेंस करना और हर कम्युनिटी को, चाहे उसकी शुरुआती दौलत कितनी भी हो, डेवलपमेंट के लिए अच्छी हालत देना है। एक सही मॉडल में एडमिनिस्ट्रेटिव नज़दीकी को इलाकों के बीच एकजुटता पर आधारित रीडिस्ट्रिब्यूशन के साथ जोड़ना ज़रूरी है।

मौजूदा सिस्टम में, टैक्स सिस्टम रिसोर्स को सेंट्रल स्ट्रक्चर में इकट्ठा करते हैं और उन्हें धीरे-धीरे, ब्यूरोक्रेटिक तरीके से और लोकल ज़रूरतों से बहुत दूर रीडिस्ट्रिब्यूट करते हैं। साथ ही, पूरी तरह से लोकल मॉडल में गंभीर कमियां भी होंगी, क्योंकि आर्थिक रूप से कमज़ोर कम्युनिटी के पास रेवेन्यू इकट्ठा करने की क्षमता कम होगी और नतीजतन, ज़रूरी सर्विसेज़ तक उनकी पहुंच कम होगी। इस टॉपिक का मतलब मैनेजमेंट की आज़ादी और डिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस के बीच बैलेंस बनाने में है, ताकि यह पक्का हो सके कि लोकल फाइनेंशियल आइसोलेशन में न बदल जाए।

मौजूदा मॉडल की समस्या बहुत ज़्यादा सेंट्रलाइज़ेशन और इलाके की असमानता के बढ़ने के बीच दोहरी कमी है। इसका कारण टैक्स सिस्टम है, जो एक तरफ तो रेवेन्यू कलेक्शन और फैसले लेने को ऐसे मामलों में फोकस करता है जो समुदायों की असलियत से दूर होते हैं, और दूसरी तरफ, जब लोकल दौलत पर बहुत ज़्यादा निर्भर होते हैं, तो इलाकों के बीच ऐतिहासिक अंतर को बनाए रखते हैं। नतीजा उल्टा होता है: पहले से डेवलप्ड इलाकों में ज़्यादा इंफ्रास्ट्रक्चर, ज़्यादा सर्विस और ज़्यादा इन्वेस्टमेंट कैपेसिटी जमा हो जाती है, जबकि कमज़ोर इलाके निर्भरता, स्ट्रक्चरल कमियों और इकोनॉमिक मोबिलिटी की कम कैपेसिटी के परमानेंट साइकिल में फंसे रहते हैं। इसका सीधा नतीजा ऐतिहासिक अंतरों का दोबारा बनना है, जिससे एक बिखरा हुआ सोशल मैप बनता है, जिसमें दौलत और गरीबी लगभग खानदानी तरीके से इलाकों में बंटी होती है।

मौजूदा मॉडल की असमानता आस-पास के इलाकों, छोटे शहरों और ऐतिहासिक रूप से नज़रअंदाज़ किए गए समुदायों में रहने वाली आबादी की असल ज़िंदगी में दिखती है। जो परिवार खराब स्कूलों, कम अस्पतालों, सीमित शहरी मोबिलिटी, साफ-सफाई की कमी और कम आर्थिक मौकों के साथ रहते हैं, उन्हें इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। जबकि कुछ सेंटर लगातार इन्वेस्टमेंट जमा करते हैं, दूसरे इलाके पुरानी कमी की हालत में बने रहते हैं। इंसानी नज़रिए से देखें तो इसका मतलब है कम उम्र, पढ़ाई-लिखाई तक कम पहुंच, समाज में ज़्यादा कमज़ोरी, और पीढ़ियों से गरीबी का बना रहना। इस मॉडल को बनाए रखने से जो लोग फ़ायदा उठाते हैं, वे बड़े रेवेन्यू कमाने वाले सेंटर्स में बैठे पॉलिटिकल और इकोनॉमिक एलीट लोग हैं, साथ ही सेंट्रलाइज़्ड एडमिनिस्ट्रेटिव स्ट्रक्चर भी हैं जिनके पास रिसोर्स के डिस्ट्रीब्यूशन पर पावर होती है।

इस सिनेरियो को देखते हुए, सही प्रपोज़ल एक ऐसा टैक्स सिस्टम है जिसमें डीसेंट्रलाइज़्ड मैनेजमेंट और कोऑपरेटिव सेंट्रल रीडिस्ट्रिब्यूशन हो। रेवेन्यू को एक बड़े, नेशनल लेवल पर बने कॉमन फंड में जाना चाहिए जो हर कम्युनिटी की असली ज़रूरतों के हिसाब से रिसोर्स को रीडिस्ट्रिब्यूट कर सके, जिसमें आबादी, सोशल इंडिकेटर, पुरानी कमी, मौजूदा इंफ्रास्ट्रक्चर और इलाके की ज़रूरत जैसे क्राइटेरिया पर विचार किया जाता है। इस तरह, सेंटर पावर को एक जगह इकट्ठा नहीं करता, बल्कि इलाकों के बीच एकजुटता को कोऑर्डिनेट करता है, जो डिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस और समय के साथ जमा हुई असमानताओं को ठीक करने के एक मैकेनिज्म के तौर पर काम करता है।

पहले स्टेप में एक सेंट्रल टेरिटोरियल इक्कलाइज़ेशन फंड बनाना शामिल है, जिसमें पब्लिक, ट्रांसपेरेंट और ऑडिटेबल रीडिस्ट्रिब्यूशन नियम हों। इस फंड को नेशनल टैक्स रेवेन्यू का ज़्यादातर हिस्सा मिलना चाहिए, खासकर इनकम, एसेट्स, बड़ी दौलत, फाइनेंशियल प्रॉफिट और हाई इकोनॉमिक कंसंट्रेशन वाली एक्टिविटीज़ पर टैक्स से। दूसरा स्टेज इन्वेस्टमेंट मैनेजमेंट का डीसेंट्रलाइज़ेशन है: रीडिस्ट्रिब्यूटेड रिसोर्स को लोकल काउंसिल और टेरिटोरियल एडमिनिस्ट्रेशन द्वारा ऑपरेशनल ऑटोनॉमी के साथ एग्जीक्यूट किया जाना चाहिए, जो ठोस सोशल डेवलपमेंट गोल से जुड़ा हो। इंस्टीट्यूशनल शब्दों में, इसका मतलब है कि हेल्थ, एजुकेशन, इंफ्रास्ट्रक्चर, हाउसिंग और जॉब क्रिएशन जैसे एरिया में रिसोर्स के एलोकेशन पर आस-पड़ोस, म्युनिसिपैलिटी और इलाके सीधे फैसला करेंगे, हमेशा पब्लिक ट्रांसपेरेंसी और सोशल कंट्रोल के सख्त सिस्टम के तहत। लोकल गवर्नमेंट सिर्फ ट्रांसफर करने वाली पैसिव एग्जीक्यूटर नहीं रहेगी और फैसले लेने वाली एजेंट बन जाएगी, हालांकि, उसे अपनी रेवेन्यू जुटाने की कैपेसिटी पर नहीं छोड़ा जाएगा।

यह साफ है कि इस मॉडल को पावर एलीट से विरोध का सामना करना पड़ेगा। इसका विरोध वेल्थ-कंसेंट्रेटिंग इकोनॉमिक ग्रुप्स से होगा, सेंट्रल एडमिनिस्ट्रेशन से होगा जो फैसले लेने पर मोनोपॉली करने के आदी हैं, और ऐतिहासिक रूप से प्रिविलेज्ड इलाकों से होगा जो रीडिस्ट्रिब्यूशन को फायदे का नुकसान समझेंगे। यह विरोध पॉलिटिकल प्रेशर, रिफॉर्म के खिलाफ नैरेटिव की फंडिंग, इकोनॉमिक अनफायबिलिटी की बातें, और इंस्टीट्यूशनल रुकावट की कोशिशों में बदल जाएगा, खासकर लेजिस्लेटिव और एडमिनिस्ट्रेटिव बॉडीज़ में जो पब्लिक बजट को कंट्रोल करती हैं। ज़्यादातर मामलों में, फिस्कल रीडिस्ट्रिब्यूशन को स्टेबिलिटी, रीजनल कॉम्पिटिटिवनेस, या इकोनॉमिक एजेंट्स के भरोसे के लिए खतरे के तौर पर पेश किया जाएगा, जबकि असल में, मकसद रेवेन्यू कलेक्शन और इन्वेस्टमेंट में पुरानी असमानताओं को बनाए रखना है।

रिफॉर्म टैक्स सिस्टम में अचानक ब्रेक पर निर्भर नहीं कर सकता, बल्कि डिसीजन-मेकिंग प्रोसेस में धीरे-धीरे, टेक्निकली और पॉलिटिकल रूप से सपोर्टेड एंट्री पर निर्भर करता है। सबसे पहले, हमें इकट्ठा किए गए रिसोर्सेज़ के ओरिजिन, कंसंट्रेशन और डेस्टिनेशन के बारे में पब्लिक ट्रांसपेरेंसी बढ़ानी होगी। जब सोशल मेजोरिटी पक्के तौर पर समझ जाती है कि कौन प्रोपोर्शनली ज़्यादा कंट्रीब्यूट करता है, कौन से रीजन इन्वेस्टमेंट को कंसंट्रेट करते हैं, और मौजूदा डिस्ट्रिब्यूशन स्ट्रक्चरल इनइक्कालिटी को कैसे मज़बूत करता है, तो रिफॉर्म के लिए पॉपुलर लेजिटिमेसी बनती है। फिस्कल समझ को स्पेशलिस्ट्स की एक्सक्लूसिव भाषा बनना बंद करके रोज़ाना की पब्लिक डिबेट का हिस्सा बनना चाहिए।

इसके बाद, प्रोग्रेसिव और टेरिटोरियली कैलिब्रेटेड रिफॉर्म्स होने चाहिए। रिग्रेसिव इंसेंटिव्स का रिव्यू, इनकम और वेल्थ पर ज़्यादा प्रोग्रेसिविटी, टैक्स रेवेन्यू का पार्शियल रीडिस्ट्रिब्यूशन, और लोकल बजट को मज़बूत करना, बिना अचानक ब्रेक पैदा किए वायबिलिटी दिखाते हैं। हर कदम से नगर पालिकाओं, समुदायों और इलाकों की फाइनेंशियल ऑटोनॉमी बढ़नी चाहिए, साथ ही ऐसे नेशनल कोऑर्डिनेशन सिस्टम भी बने रहने चाहिए जो गंभीर असंतुलन को रोक सकें। लोगों के दबाव को डीसेंट्रलाइज़्ड फिस्कल काउंसिल, रीजनल पार्टिसिपेटरी बजटिंग, रेवेन्यू डिस्ट्रीब्यूशन के लिए साफ नियम और परमानेंट सिटिज़न ऑडिट सिस्टम में बदलना होगा। हर नई तरक्की से सेंटर में फैसले लेने का कंसंट्रेशन कम होना चाहिए और इलाकों की अपनी ज़रूरतों को पूरा करने की क्षमता बढ़नी चाहिए। हमें डीसेंट्रलाइज़ेशन को कुल मिलाकर बनाना होगाः एफिशिएंसी, ट्रांसपेरेंसी और लेजिटिमेसी में हर लोकल फायदा रीडिस्ट्रीब्यूशन में अगले कदम को मजबूत करता है। कोई भी इकॉनमी तब तक एकजुटता और भविष्य नहीं बनाए रख सकती जब तक पब्लिक रेवेन्यू मुख्य रूप से ऐतिहासिक खास अधिकारों को बचाने के लिए काम न करे। टैक्स सिस्टम को इनडायरेक्ट कंसंट्रेशन का एक ज़रिया बनना बंद करना होगा और बैलेंस, टेरिटोरियल ऑटोनॉमी और आम भलाई के आर्किटेक्चर के तौर पर काम करना शुरू करना होगा। मुख्य स्ट्रैटेजी टैक्स फ्लो और रीडिस्ट्रीब्यूशन के सोशल असर में पूरी तरह ट्रांसपेरेंसी है, जो ऑब्जेक्टिवली यह दिखाता है कि रिसोर्स कहाँ इस्तेमाल हो रहे हैं और कौन से ह्यूमन इंडिकेटर समय के साथ बेहतर हो रहे हैं। लोगों की भागीदारी को सिटिज़न फिस्कल काउंसिल, इंडिपेंडेंट ऑडिट और पब्लिक रियल-टाइम मॉनिटरिंग प्लेटफॉर्म के ज़रिए मजबूत किया जाना चाहिए।

एक सही सिस्टम वह है जिसमें सेंटर पावर जमा करना बंद कर दे और न्याय को कोऑर्डिनेट करना शुरू कर दे, जिसमें लोकल इलाके को अपनी पिछली दौलत के लिए दोषी ठहराए बिना आवाज़ मिले, और जिसमें टैक्सेशन खास अधिकार बनाए रखने का काम करना बंद कर दे और सामाजिक एकता का एक ठोस ज़रिया बन जाए। आर्थिक न्याय बाज़ार की अचानक होने वाली गतिविधियों से नहीं, बल्कि रिसोर्स, पावर और भविष्य को फिर से बांटने की इंस्टीट्यूशनल हिम्मत से आएगा। गरीब समुदाय कम रिसोर्स के लिए एक-दूसरे से मुकाबला करना बंद कर देते हैं और विकास के एक सॉलिडैरिटी नेटवर्क में शामिल होने लगते हैं, जिसमें आर्थिक रूप से मज़बूत इलाके सामूहिक मौकों को बैलेंस करने में मदद करते हैं। साथ ही, डीसेंट्रलाइज़िंग इम्प्लीमेंटेशन हर समुदाय को अपनी असली ज़रूरतों के हिसाब से रिसोर्स लगाने की इजाज़त देता है, जिससे एफिशिएंसी, नागरिकों की भागीदारी और पॉलिटिकल लेजिटिमेसी बढ़ती है। इसका नतीजा एक ऐसा मॉडल है जो डिस्ट्रिब्यूटिव न्याय को एडमिनिस्ट्रेटिव ऑटोनॉमी के साथ जोड़ता

है। एक सही टैक्स सिस्टम सिर्फ़ उन लोगों को इनाम नहीं दे सकता जिनके पास पहले से ही दौलत है। इसका सबसे बड़ा काम ऐतिहासिक असमानता को एक आम भविष्य की संभावना में बदलना है।

15. मेरिट और स्ट्रक्चरल जस्टिस

हम समाज को शुरू से ही एक असमान रेस में बदले बिना, हर एक की कोशिश को कैसे पहचान सकते हैं? यह टॉपिक ठीक सोशल जस्टिस और मेरिट को अहमियत देने के बीच इसी टेंशन से पैदा होता है। एक तरफ, यह सही है कि कंट्रीब्यूशन, डेडिकेशन और इनोवेशन को पहचान मिलनी चाहिए। दूसरी तरफ, एक ऐसा मॉडल जो शुरुआती हालात पर विचार किए बिना सिर्फ़ नतीजों को इनाम देता है, वह असमानता को बनाए रखता है। चुनौती एक ऐसा सिस्टम बनाने में है जो मौके बांटे और साथ ही, बेहतरीन काम को बढ़ावा दे।

आज, मेरिटोक्रेसी को जस्टिस के प्रिंसिपल के तौर पर पेश किया जाता है: जो ज़्यादा मेहनत करते हैं, वे आगे बढ़ते हैं। पहली नज़र में, यह फ़ॉर्मूला नैतिक रूप से पक्का नहीं लगता। हालांकि, सोशल रियलिटी एक गहरा उलटापन दिखाती है। लोग एक ही पॉइंट से शुरू नहीं करते। एजुकेशन, फ़ैमिली इनकम, टेक्नोलॉजी तक पहुंच, हेल्थ, उपलब्ध समय, इमोशनल स्टेबिलिटी और सपोर्ट नेटवर्क पूरी तरह से असमान बेस बनाते हैं। इस टॉपिक की अहमियत सोशल मोबिलिटी, इकोनॉमिक इंसेंटिव और कम्युनिटी कोहेशन पर इसके सीधे असर में है। जब असमानता की शुरुआत पर विचार किए बिना मेरिट का मूल्यांकन किया जाता है, तो सिस्टम असली योगदान को इनाम देने में नाकाम रहता है और इसके बजाय विरासत में मिले फायदों को इनाम देता है।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या ठीक बातचीत और असलियत के बीच के अंतर में है। इसका कारण शुरुआती स्ट्रक्चरल शर्तों से अलग मेरिट क्राइटेरिया को अपनाना है। नतीजतन, हमारे पास न्याय की आड़ में खास अधिकारों का दोबारा इस्तेमाल होता है। इसका आखिरी असर असमानता का बढ़ना और आर्थिक, एजुकेशनल और राजनीतिक संस्थाओं में भरोसे का खत्म होना है। ऊपर की ओर बढ़ने को बढ़ावा देने के बजाय, पारंपरिक मेरिटोक्रेसी अक्सर मौजूदा दूरियों को सही ठहराती है, पुराने खास अधिकारों को व्यक्तिगत बेहतरी के कथित सबूत में बदल देती है।

जो लोग यह कीमत चुकाते हैं, वे वे लोग हैं जिनके पास टैलेंट, अनुशासन और काम होने के बावजूद, बराबरी की शर्तों पर मुकाबला करने के लिए कम से कम शर्तें नहीं हैं। असमानता

खुद को अच्छी शिक्षा तक पहुंच के बिना होशियार स्टूडेंट में, बिना कॉन्टैक्ट के नेटवर्क वाले स्किल्ड वर्कर में, बिना शुरुआती पूंजी वाले एंटरप्रेन्योर में, और उस कम्युनिटी में दिखाती है जिसके पास अपनी आर्थिक क्षमता को विकसित करने के लिए बेसिक इंफ्रास्ट्रक्चर की कमी है। सामाजिक दुख सामूहिक निराशा में, सोशल मोबिलिटी में ठहराव में, और इस बढ़ती सोच में दिखता है कि सिस्टम कोशिश को नहीं, बल्कि शुरुआत को इनाम देता है।

इस स्ट्रक्चर से फ़ायदा उठाने वाले वे ग्रुप हैं जो पहले से ही अच्छे माहौल में हैं, जिनके जमा हुए फ़ायदे सिलेक्शन और इनाम के न्यूट्रल लगने वाले तरीकों से लगातार दोहराए जाते हैं। आर्थिक और इंस्टीट्यूशनल पावर के एलीट इस कहानी को बनाए रखने से फ़ायदा उठाते हैं, क्योंकि यह असमानता के बने रहने को नैतिक मान्यता देता है। विरासत को मेरिट में बदलकर, सिस्टम अपने खुद के रिप्रोडक्शन को बचाता है।

हमें डिस्ट्रिब्यूटिव करेंसी और एक कॉन्टेक्स्चुअलाइज़्ड मेरिट सिस्टम पर आधारित एक नया तरीका अपनाना होगा। मुख्य प्रस्ताव कोशिश, बेहतरीन काम और योगदान के लिए इंसेंटिव को खत्म करना नहीं है, बल्कि उन्हें सही नींव पर फिर से बनाना है। लागू करने के पहले चरण में कॉन्टेक्स्ट-वेटेड मेरिट इंडेक्स बनाना शामिल है, जो शुरुआती पॉइंट, सामने आई रुकावटों, योगदान के सामाजिक असर और असल व्यक्तिगत तरक्की पर विचार कर सकें। आर्थिक शब्दों में, डिस्ट्रिब्यूटिव करेंसी के प्रस्ताव में ऐसे इंस्ट्रूमेंट बनाना शामिल है जो पारंपरिक मॉनेटरी सिस्टम को पूरा करते हैं, और असरदार सामाजिक योगदान को महत्व देने की ओर उन्मुख हैं। ये करेंसी कम्युनिटी, रीजनल या नेशनल लेवल पर काम कर सकती हैं, और इन्हें एजुकेशन, कम्युनिटी केयर, सोशल इनोवेशन, साइंटिफिक प्रोडक्शन, एनवायरनमेंटल रिकवरी और लोकल इंफ्रास्ट्रक्चर को मजबूत करने जैसी ज़्यादा कलेक्टिव वैल्यू वाली एक्टिविटीज़ में हिस्सा लेने के लिए दिया जाता है। पूरी तरह से जमा होने वाली करेंसी के उलट, डिस्ट्रिब्यूटिव करेंसी का एक रीडिस्ट्रिब्यूटिव और रीजेनरेटिव फंक्शन होता है।

इसे लागू करने का मॉडल अलग-अलग फेज़ में होना चाहिए। पहला फेज़ एक पायलट है, जिसका इस्तेमाल खास कम्युनिटीज़ या शहरों में किया जाएगा, जिसमें लोकल काउंसिल, डिजिटल रजिस्ट्रेशन प्लेटफॉर्म और पब्लिक ऑडिटिंग को इंटीग्रेट किया जाएगा। दूसरे फेज़ में सिस्टम को बढ़ाया जाएगा ताकि इसमें एजुकेशनल इंस्टीट्यूशन, वोकेशनल ट्रेनिंग प्रोग्राम और लोकल इकोनॉमिक डेवलपमेंट प्रोजेक्ट शामिल हो सकें। तीसरा फेज़ पिछले चैप्टर में बताए गए

रीडिस्ट्रिब्यूटिव टैक्स सिस्टम के साथ इंटीग्रेशन को मजबूत करता है, जिससे असली सोशल मेरिट को क्रेडिट, एडवांस्ड ट्रेनिंग और इंस्टीट्यूशनल मौकों तक ज़्यादा एक्सेस मिल सके।

पावर एलीट इस बदलाव का कड़ा विरोध करेंगे। मौजूदा मेरिटोक्रेटिक कहानी से फ़ायदा उठाने वाले सेक्टर इसका विरोध करेंगे, खासकर ऐसे ग्रुप जो सिर्फ़ व्यक्तिगत श्रेष्ठता के विचार से अपनी स्थिति को सही ठहराते हैं। यह विरोध उन बातों के ज़रिए सामने आता है जो ऐतिहासिक असमानताओं को कोशिश, टैलेंट या अनुशासन का स्वाभाविक नतीजा बताती हैं, और शुरुआत, पहुँच और मौके की गहरी असमानताओं को नज़रअंदाज़ करती हैं। इस संदर्भ में, मेरिट का बचाव, काबिलियत की पहचान नहीं रह जाता और जमा हुए खास अधिकारों को बचाने के लिए एक सोच वाला ज़रिया बन जाता है। विरोध उन संस्थानों से भी हो सकता है जो पारंपरिक चुनिंदा क्राइटेरिया के आदी हैं और जो स्ट्रक्चरल असमानताओं को नज़रअंदाज़ करते हैं। एजुकेशन सिस्टम, भर्ती प्रक्रिया, प्रोफेशनल तरक्की के मॉडल और पब्लिक रिप्रेजेंटेशन के स्ट्रक्चर ऐसे फ़िल्टर बनाते हैं जो न्यूट्रल लगते हैं लेकिन उन लोगों का पक्ष लेते हैं जो पहले से ही ऐतिहासिक रूप से फ़ायदेमंद पदों से शुरू करते हैं। सिस्टम अलग-अलग नतीजों को न्याय का सबूत मानता है, जबकि वे अक्सर बहुत ज़्यादा अलग-अलग शुरुआती हालात दिखाते हैं।

पहला कदम समाज के ज़्यादातर लोगों को असली मेरिट और विरासत में मिले खास अधिकारों के बीच का अंतर दिखाना है। इसके लिए साफ़ पब्लिक भाषा, आसानी से मिलने वाला डेटा बनाना और यह पक्का दिखाना ज़रूरी है कि इनकम, इलाका, एजुकेशन तक पहुँच, असर के नेटवर्क और कल्चरल कैपिटल कैसे लोगों की राह तय करते हैं। जब ज़्यादातर लोग यह समझ जाते हैं कि शुरुआती पॉइंट ही आखिर को मज़बूती से तय करता है, तो मेरिट की ज़्यादा सही और सामाजिक रूप से सही सोच के लिए जगह बनती है। दूसरा स्टेज खुद चुने हुए इंस्टीट्यूशन के अंदर होना चाहिए। एंट्री क्राइटेरिया में बदलाव, रिटेंशन पॉलिसी, लेवलिंग प्रोग्राम, सोशल कोटा, सिलेक्शन प्रोसेस में ट्रांसपेरेंसी और कॉन्टेक्स्चुअलाइज़्ड परफॉर्मेंस इवैल्यूएशन, ये सब मिलकर ऐसे उपाय हैं जो ऐतिहासिक फ़ायदों के अपने आप होने को कम करते हैं। हर इंस्टीट्यूशनल तरक्की इस बात को कमज़ोर करती है कि बहुत ज़्यादा असमानता सिर्फ़ व्यक्तिगत मेरिट का रिफ्लेक्शन है। लोगों के दबाव को कानूनी, रेगुलेटरी और एडमिनिस्ट्रेटिव सुधारों में बदलना होगा जो आर्थिक, एकेडमिक और राजनीतिक मौकों तक पहुँच के क्राइटेरिया में डिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस को शामिल करें। हमें एक एब्स्ट्रैक्ट मेरिट मॉडल से एक सिचुएटेड मेरिट मॉडल में बदलना होगा, जो स्ट्रक्चर को नज़रअंदाज़ किए बिना कोशिश को पहचान सके। कोई भी समाज खुद को सही

नहीं ठहरा सकता, जब वह शुरुआत की बहुत अलग-अलग स्थितियों से पैदा हुई असमानताओं को सही ठहराने के लिए मेरिट की भाषा का इस्तेमाल करता है। हमें एक ऐसा सिस्टम लागू करना होगा जिसमें मेरिट खास अधिकार का मुखौटा बनना बंद कर दे और असली जीत, मिलकर किए गए योगदान और इंसानी तरक्की को पहचान दे। सोशल जस्टिस के लिए बेहतरीन काम को छोड़ना नहीं, बल्कि उसे उसकी शुरुआत की बेड़ियों से आज़ाद करना ज़रूरी है। ज़्यादा बैलेंस्ड शुरुआती डिस्ट्रीब्यूशन के ज़रिए बुनियादी असमानताओं को ठीक करके, मेरिट ज़्यादा सही तरीके से निजी योगदान को दिखाने लगती है। साथ ही, बांटने वाली करेंसी सबसे कमज़ोर लोगों के प्रति मिलकर की गई ज़िम्मेदारी को छोड़े बिना कोशिश और इनोवेशन के लिए इंसेंटिव को मज़बूत करती हैं। इससे एक ऐसा आर्थिक माहौल बनता है जिसमें बेहतरीन काम और एकजुटता एक-दूसरे की विरोधी ताकतें बनना बंद कर देती हैं और एक-दूसरे को पूरा करने वाले तरीके से काम करने लगती हैं। आर्थिक न्याय का भविष्य मेरिट को बराबरी के साथ मिलाने की काबिलियत पर निर्भर करता है। एक ऐसा सिस्टम जो बिना इंसेंटिव दिए सिर्फ़ बांटता है, रुक सकता है। एक ऐसा सिस्टम जो असमानताओं को ठीक किए बिना सिर्फ़ नतीजों को इनाम देता है, वह बँटवारे को और गहरा करता है। उम्मीद तब पैदा होती है जब समाज एक ऐसे फ्रेमवर्क के अंदर इंसानी कोशिश की कीमत को पहचान पाता है जो सभी के लिए इज़्ज़त और मौके की गारंटी देता है।

16. फाइनेंशियल पावर और रीडिस्ट्रिब्यूट करने के तरीके

समाज को चलाने वाले रिसोर्स की किस्मत का फैसला कौन करेगा: तुरंत के फायदे या एक ज़िम्मेदार लंबे समय का विज़न? यह थीम हमारी ज़िंदगी में एक अहम जगह रखती है क्योंकि यह उन लोगों से जुड़ी है जो किसी कम्युनिटी, कंपनी या देश में पैसे, इन्वेस्टमेंट और डिस्ट्रिब्यूशन के फ्लो को मैनेज करते हैं। सिर्फ़ टेक्निकल ऑपरेटर से ज़्यादा, ये एजेंट इकोनॉमिक स्टेबिलिटी और सोशल जस्टिस बनाने में स्ट्रेटेजिक प्लेयर बन जाते हैं।

आज की दुनिया में, फाइनेंशियल मैनेजर सीधे तौर पर पब्लिक बजट, प्रोडक्टिव इन्वेस्टमेंट, क्रेडिट, इंफ्रास्ट्रक्चर और कैपिटल एलोकेशन के बारे में फैसलों पर असर डालते हैं। वे तय करते हैं कि कौन से सेक्टर बढ़ेंगे, किन कम्युनिटी को रिसोर्स मिलेंगे, और कौन से प्रोजेक्ट कामयाब रहेंगे। पब्लिक लेवल पर, फाइनेंशियल मैनेजमेंट की क्वालिटी हेल्थ, एजुकेशन, ट्रांसपोर्टेशन और सिक्योरिटी जैसी ज़रूरी सर्विसेज़ पर असर डालती है। प्राइवेट लेवल पर, यह जॉब क्रिएशन, इनोवेशन और इकोनॉमिक सस्टेनेबिलिटी पर असर डालती है।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या फाइनेंशियल टेक्नीक और सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी के बीच के फर्क में है। इसका कारण ऐसे स्ट्रक्चर हैं जो तुरंत प्रॉफिट, एक जगह जमा हुए फायदों को बनाए रखने और ऐसे फैसलों को प्राथमिकता देते हैं जो ट्रांसपेरेंट नहीं होते, जो कम रिटर्न साइकिल और इकोनॉमिक रूप से दबदबे वाले ग्रुप के दबाव से गाइड होते हैं। हम आर्थिक, स्वास्थ्य और पर्यावरण संकटों के सामने संसाधनों के गलत बंटवारे, इलाके और सामाजिक असमानताओं में बढ़ोतरी, और स्ट्रक्चरल कमज़ोरी का सामना कर रहे हैं। इसका आखिरी असर फाइनेंशियल इंस्टीट्यूशन पर सामूहिक भरोसे की कमी और लंबे समय की प्लानिंग की क्षमता का कमज़ोर होना है।

जब फाइनेंशियल मैनेजमेंट सिर्फ़ कम समय के लिए होता है, तो इसकी कीमत पूरे समाज को चुकानी पड़ती है। यह कीमत वे लोग चुकाते हैं जो ज़रूरी सेवाओं में कटौती, सीमित क्रेडिट, ज़्यादा मुनाफ़े वाले और कम सामाजिक उपयोगिता वाले सेक्टर में इन्वेस्टमेंट के जमा होने, और संकटों का सामना करने के लिए स्ट्रेटेजिक रिज़र्व की कमी से परेशान हैं। हम जो देखते हैं वह है पब्लिक पॉलिसी की अनिश्चितता, स्ट्रक्चरिंग प्रोजेक्ट में रुकावट और पूरे परिवारों और समुदायों की आर्थिक कमज़ोरी। अस्थिरता के समय, इसके असर और भी ज़्यादा दिखाई देते हैं: बेरोज़गारी, महंगाई, प्रोडक्टिविटी में कमी और बड़े पैमाने पर असुरक्षा। इस मॉडल से फ़ायदा उठाने वाले लोग फाइनेंशियल एलीट, बड़े इन्वेस्टमेंट ग्रुप और ऐसे स्ट्रक्चर हैं जिन्हें सिर्फ़ तुरंत रिटर्न पर ध्यान देने वाले कैपिटल के तेज़ सर्कुलेशन से फ़ायदा होता है। यह लॉजिक पैसे के जमा होने को मज़बूत करता है और पब्लिक प्लानिंग को कम समय के निजी हितों के अधीन कर देता है। नतीजा यह है कि कुछ लोगों के लिए इकॉनमी एफिशिएंट है, लेकिन कई लोगों के लिए अनस्टेबल है।

एक नए अप्रोच की ज़रूरत है जो फाइनेंशियल मैनेजर्स को कलेक्टिव बैलेंस के गार्डियन के तौर पर फिर से पोजीशन करे। प्रपोज़ल यह है कि इन प्रोफेशनल्स को एक बड़ा रोल दिया जाए, जिसमें टेक्निकल कॉम्पिटेंस, डिसीजनल ट्रांसपेरेंसी और लॉन्ग-टर्म सोशल ऑब्जेक्टिव्स के प्रति कमिटमेंट को मिलाया जाए। यह सिर्फ़ नंबर्स को मैनेज करने के बारे में नहीं है, बल्कि ह्यूमन डेवलपमेंट, सस्टेनेबिलिटी और इंस्टीट्यूशनल स्टेबिलिटी के इंस्ट्रूमेंट्स के तौर पर रिसोर्सेज़ को मैनेज करने के बारे में है। इस नए मॉडल को लागू करने की शुरुआत पब्लिक इंटरेस्ट के फिड्यूशरी मैंडेट्स बनाने से होनी चाहिए। प्रैक्टिकल तौर पर, फाइनेंशियल मैनेजर्स जो पब्लिक रिसोर्सेज़, रीडिस्ट्रिब्यूटिव फंड्स, स्ट्रेटेजिक रिज़र्व्स और बड़े सोशल इन्वेस्टमेंट इंस्ट्रूमेंट्स के साथ काम करते हैं, उन्हें कानूनी तौर पर कलेक्टिव इम्पैक्ट गोल्स से बंधा होना चाहिए, न कि

प्रॉफिटेबिलिटी इंडिकेटर्स से। इन मैंडेट्स में इनइक्वालिटी रिडक्शन, ज़रूरी इंफ्रास्ट्रक्चर, प्रोडक्टिव इनोवेशन, सस्टेनेबिलिटी और क्राइसिस प्रोटेक्शन जैसे एरिया में क्लियर ऑब्जेक्टिव्स शामिल होने चाहिए। दूसरे स्टेज में इंडिपेंडेंट फाइनेंशियल ओवरसाइट बोर्ड्स बनाना शामिल है, जिसमें टेक्निकल एक्सपर्ट्स, कम्युनिटी रिप्रेजेंटेटिव्स, कंट्रोल बॉडीज़ और परमानेंट एक्सटर्नल ऑडिट्स शामिल होंगे। ये बोर्ड्स इकोनॉमिक एलीट्स द्वारा कैप्चर और कंसन्ट्रेटेड इंटरेस्ट्स से प्रेरित डिसीजन्स के खिलाफ एक बैरियर के तौर पर काम करेंगे। सभी स्ट्रेटेजिक रिसोर्स एलोकेशन पब्लिकली ट्रेसेबल होने चाहिए, जिसमें सोशल, टेरिटोरियल और इंस्टीट्यूशनल रिटर्न के ट्रांसपेरेंट इंडिकेटर हों।

फाइनेंशियल पावर के एलीट इस मॉडल का कड़ा विरोध करेंगे। सोशल कंट्रोल के बिना ऑटोनॉमस फैसले लेने के आदी सेक्टर्स से सीधा विरोध होगा, टेक्निकल ओपेसिटी का, और बड़े पैमाने पर रिसोर्स पर प्राइवेट रिटर्न को मैक्सिमाइज़ करने का। यह विरोध कई एक साथ चैनलों से दिखेगा: इंस्टीट्यूशनल लॉबिंग, रेगुलेटरी फ्रेमवर्क पर असर, इकोनॉमिक पॉलिसी बनाने वालों पर दबाव, सिस्टमिक रिस्क के बारे में नैरेटिव बनाना, और पब्लिक इनएफिशिएंसी की बार-बार होने वाली बातों के ज़रिए पब्लिक डिबेट पर कब्ज़ा करना। रीडिस्ट्रिब्यूशन को मार्केट के भरोसे, लिक्विडिटी और इन्वेस्टमेंट के लिए खतरे के तौर पर पेश किया जाएगा, जबकि असल में, मकसद कुछ लोगों की फाइनेंशियल फ्लो पर फैसला लेने की क्षमता को बनाए रखना है जो कई लोगों की ज़िंदगी पर असर डालते हैं। विरोध टेक्निकल भाषा का इस्तेमाल करके जानबूझकर मुश्किल बनाने, फाइनेंशियल इंस्ट्रूमेंट्स की ओपेसिटी, और जानकारी को ऐसे बैरियर के तौर पर जमा करने से भी हो सकता है जो सोशल मेजोरिटी को इकोनॉमिक डिबेट से दूर रखते हैं। जब सिस्टम पब्लिक फैसलों को ऐसे मामलों में बदल देता है जो पहुंच से बाहर होते हैं, तो यह पॉपुलर कॉन्टेस्ट की कैपेसिटी को कम करता है और फैसले लेने के प्रिविलेज को बनाए रखने का स्कोप बढ़ाता है। डिजिटल ट्रांसपेरेंसी, रियल-टाइम अकाउंटेबिलिटी और सिटिज़न ऑडिटिंग के लिए मजबूत स्ट्रक्चर बनाना ज़रूरी होगा। फाइनेंशियल टेक्नोक्रेसी अब एक ऐसी भाषा की तरह काम नहीं कर सकती जो एक जगह से दूसरी जगह जाकर फैसले लेने को बचाती हो। टेक्निकल ज्ञान को बचाकर रखना होगा, लेकिन डेमोक्रेटिक लेजिटिमेसी के सिस्टम के तहत रखना होगा।

पहले कदम में बड़े फाइनेंशियल फ्लो, इंसेंटिव, फंड, क्रेडिट ऑपरेशन और इन्वेस्टमेंट सिस्टम के बारे में पब्लिक ट्रांसपेरेंसी बढ़ाना शामिल है। समाज के ज़्यादातर लोगों को यह समझने की ज़रूरत है कि रिसोर्स कैसे सर्कुलेट होते हैं, प्रायोरिटी कौन तय करता है, और कौन से सेक्टर

फायदे को एक जगह इकट्ठा करते हैं। जब लोग फाइनेंशियल पावर और ठोस असमानता के बीच का रिश्ता देखते हैं, तो बदलाव के लिए एक पॉलिटिकल आधार बनता है। दूसरा कदम रेगुलेटरी और फिस्कल स्ट्रक्चर के अंदर होना चाहिए। पब्लिक फंड का सोशल ऑडिट, बैंकिंग ट्रांसपेरेंसी के लिए सख्त नियम, रिग्रेसिव इंसेंटिव की लिमिट, एक्स्ट्राऑर्डिनरी फायदे पर प्रोग्रेसिव टैक्स, और पब्लिक और कम्युनिटी बैंकों को मज़बूत करना शुरुआती उपायों के तौर पर काम करते हैं जो धीरे-धीरे एक जगह जमा कैपिटल की बिना देखरेख वाली ऑटोनॉमी को कम करते हैं। हर कदम से यह दिखाना चाहिए कि सोशल कंट्रोल का मतलब इकोनॉमिक रुकावट नहीं है, बल्कि रिसोर्स के कलेक्टिव इस्तेमाल को रैशनलाइज़ करना है। सोशल प्रेशर को नागरिकों की भागीदारी, मज़बूत पार्लियामेंट्री निगरानी, इंडिपेंडेंट रेगुलेटरी बॉडी और परमानेंट रीडिस्ट्रिब्यूटिव इंस्ट्रूमेंट वाली इकोनॉमिक काउंसिल में बदलने की ज़रूरत है। हमें बड़े कैपिटल के मैनेजमेंट को धीरे-धीरे ज़्यादा ट्रांसपेरेंट, कंट्रोल करने लायक और आम भलाई के लिए बनाना होगा। कोई भी समाज डेमोक्रेटिक लेजिटिमेसी बनाए नहीं रख सकता जब तक कि बड़े फाइनेंशियल फैसले सामाजिक भागीदारी से दूर रहें और सिर्फ़ प्राइवेट रिटर्न के अधीन रहें।

जब कैपिटल खास अधिकार बचाने का ज़रिया नहीं रह जाता और कलेक्टिव स्टेबिलिटी के टूल के तौर पर काम करने लगता है, तो फाइनेंशियल रिसोर्स सिर्फ़ अकाउंटिंग फ्लो नहीं रह जाते: वे ज़िंदगी, इज्ज़त और भविष्य के लिए ठोस संभावनाएं बन जाते हैं। अपने मैनेजरों को सोशल बैलेंस के गार्डियन के तौर पर फिर से बनाना, सच में रीडिस्ट्रिब्यूटिव इकॉनमी बनाने के सबसे अहम कदमों में से एक है। कलेक्टिव ज़िम्मेदारी से गाइडेड फाइनेंशियल मैनेजमेंट रिसोर्स के डिस्ट्रिब्यूशन को बेहतर बनाता है, इकॉनमिक प्रेडिक्टेबिलिटी को मज़बूत करता है, और स्ट्रक्चरल वेस्ट को कम करता है। फाइनेंशियल फैसलों को सोशल और इलाके के लक्ष्यों के साथ जोड़कर, ज़्यादा बैलेंस्ड ग्रोथ को बढ़ावा देना, कमज़ोर समुदायों की रक्षा करना और इकॉनमिक इंस्टीट्यूशन में भरोसा बढ़ाना मुमकिन हो जाता है। कैपिटल जमा करने का ज़रिया नहीं रह जाता और सोशल कंस्ट्रक्शन के लिए एक मैकेनिज्म के तौर पर काम करने लगता है। फाइनेंशियल मैनेजरों की भूमिका अकाउंटिंग के दायरे से आगे बढ़कर कलेक्टिव भविष्य के आर्किटेक्चर तक पहुँच जाती है। स्थिर समाज सिर्फ़ दौलत पर ही नहीं, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करते हैं कि उस दौलत को कैसे मैनेज किया जाता है। जब फाइनेंशियल मैनेजमेंट आम भलाई को ध्यान में रखकर किया जाता है, तो रिसोर्स को हमेशा रहने वाली खुशहाली में बदलने, असमानता को कम करने और ज़्यादा इंसानी इकोनॉमिक मॉडल की उम्मीद को मज़बूत करने की पक्की संभावना बनती है।

17. नॉर्मेटिव प्रोसेस का डेमोक्रेटाइज़ेशन

कम्यूज़िक लाइफ़ को गाइड करने वाले नियम कौन लिखे: पॉलिटिकल पावर की ताकत या उन लोगों की काबिलियत जो सोशल रियलिटी को गहराई से समझते हैं? यह चैप्टर पब्लिक नॉर्म्स और गाइडलाइंस को बनाने के तरीके में एक बड़ा बदलाव प्रपोज़ करता है। लेजिस्लेटिव प्रोडक्शन को पावर के लिए स्ट्रगल से जोड़ने के बजाय, प्रपोज़ल नॉलेज, टेक्नीक और एथिकल रिस्पॉन्सिबिलिटी की अथॉरिटी पर फ़ोकस करता है।

मौजूदा सिस्टम में, कानूनों और नॉर्म्स की ड्राफ़्टिंग पार्टी के फ़ायदों, असर को लेकर झगड़ों और इकोनॉमिक प्रेशर से भरी होती है। हालांकि पॉलिटिकल रिप्रेजेंटेशन एक ज़रूरी रोल निभाता है, लेकिन यह पब्लिक फ़ाइनेंस, हेल्थ, टेक्नोलॉजी, एनवायरनमेंट और सोशल ऑर्गनाइज़ेशन जैसे मुश्किल मामलों से निपटने के लिए काफ़ी टेक्निकल कैपेसिटी में नहीं बदलता है। खराब तरीके से बने कानून लीगल अनसर्टेनिटी, इंस्टीट्यूशनल इनएफ़िशिएंसी और लोगों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर सीधे असर डालते हैं।

मौजूदा मॉडल के साथ प्रॉब्लम नॉर्मेटिव फ़ॉर्मूलेशन और एक्चुअल स्पेशलाइज़ेशन के बीच के गैप में है। इसका कारण पॉलिटिकल नेगोशिएशन, कोएलिशन मेंटेनेंस, इलेक्शन कैलकुलेशन और कंसोलिडेटेड फ़ायदों को बचाने से चलने वाले लेजिस्लेटिव फ़ैसलों का हावी होना है। नॉर्मेटिव प्रोडक्शन, टेक्निकल सबूतों के गहराई से एनालिसिस से कम और इंस्टीट्यूशनल स्ट्रक्चर के अंदर असर बनाए रखने की कोशिश करने वाली ताकतों के बीच झगड़े से ज़्यादा होता है। इसका नतीजा यह होता है कि ऐसे नॉर्म्स बनते हैं जो उन मुद्दों की कॉम्प्लेक्सिटी से अलग होते हैं जिन्हें वे रेगुलेट करना चाहते हैं, जिससे अस्थिर, उलटे कानूनी सिस्टम या ऐसे सिस्टम बनते हैं जो समाज की ठोस ज़रूरतों को पूरा करने में नाकाम रहते हैं। जब कानून ज्ञान से ज़्यादा झगड़े से बनता है, तो उसकी लेजिटिमेसी और असर कमज़ोर हो जाता है। हम जो देखते हैं वह है खराब सर्विस, नॉर्मेटिव झगड़े, बहुत ज़्यादा ज्यूडिशियलाइज़ेशन, और सोशल, इकोनॉमिक और एनवायर्नमेंटल संकटों पर जल्दी रिस्पॉन्ड करने में इंस्टीट्यूशनल नाकामी। इस मॉडल से फ़ायदा उठाने वाले पॉलिटिकल एलीट, लॉबी ग्रुप और पार्टी स्ट्रक्चर हैं जिन्हें टेक्निकल ओपेसिटी और पावर नेगोशिएशन से चलने वाले नॉर्मेटिव प्रोडक्शन से फ़ायदा होता है। स्पेशलाइज़ेशन की कमी से कानून पर एक जगह जमा हितों का कब्ज़ा हो जाता है, क्योंकि कॉम्प्लेक्स नॉर्म्स इकोनॉमिक सेक्टर और अंदरूनी गठबंधनों के इनडायरेक्ट असर के लिए उपजाऊ ज़मीन बन जाते हैं।

इस सिनेरियो को देखते हुए, बिना किसी दबाव के एक्सपर्ट लेजिस्लेटर का प्रपोज़ल सामने आता है। मुख्य विचार यह है कि नॉर्मेटिव फॉर्मूलेशन खास क्षेत्रों, जैसे कि इकोनॉमिक्स, हेल्थ, एनवायरनमेंट, एजुकेशन, इंफ्रास्ट्रक्चर, टेक्नोलॉजी और सिविल राइट्स में बहुत काबिल प्रोफेशनल्स द्वारा किया जाना चाहिए, जो इंटेलेक्चुअल ऑटोनॉमी के साथ काम करें और पार्टी के दबाव या राजनीतिक थोपने के पारंपरिक तरीकों के सीधे आगे न झुकें। ये एक्सपर्ट्स ताकत से पावर का इस्तेमाल नहीं करते, बल्कि टेक्निकल लेजिटिमेसी, सोशल डायलॉग और सामूहिक हित के प्रति कमिटमेंट से करते हैं। इस मॉडल को दो इंस्टीट्यूशनल लेयर्स में लागू किया जाना चाहिए। पहली लेयर में सेक्टोरल लेजिस्लेटिव टेक्निकल चैंबर्स बनाना शामिल है, जिसमें एकेडमिक मेरिट, प्रूवन प्रैक्टिकल एक्सपीरियंस और पब्लिक इंटीग्रिटी के इतिहास के आधार पर चुने गए एक्सपर्ट्स शामिल होंगे। इन प्रोफेशनल्स के पास एक टेम्परेरी मैंडेट, समय-समय पर इवैल्यूएशन होगा, और उनकी भूमिका नॉर्मेटिव प्रपोज़ल्स के टेक्निकल फॉर्मूलेशन तक ही सीमित होगी। दूसरी लेयर डेमोक्रेटिक लेजिटिमेसी को बचाती है और बढ़ाती है: एक्सपर्ट्स द्वारा डेवलप किए गए हर प्रपोज़ल पर स्ट्रक्चर्ड पब्लिक डिस्कशन, पॉपुलर कंसल्टेशन, कम्युनिटी हियरिंग्स, टेरिटोरियल काउंसिल्स की भागीदारी और डेमोक्रेटिक रूप से चुने गए रिप्रेजेंटेटिव्स द्वारा रिव्यू से गुजरना होगा। इसका मकसद डेमोक्रेटिक भागीदारी को खत्म करना नहीं है, बल्कि स्ट्रक्चर्ड नॉलेज के ज़रिए इसे बढ़ाना है। रेगुलेशन सिर्फ़ पॉलिटिकल बारगेनिंग का नतीजा नहीं रह जाते, बल्कि टेक्निकल एक्सपर्टीज़ और सोशल सोच-विचार के बीच इंटीग्रेशन का नतीजा बन जाते हैं।

साफ़ है कि लेजिस्लेटिव प्रोडक्शन पर मोनोपॉली करने के आदी पार्टी स्ट्रक्चर, नॉर्मेटिव प्रोसेस पर असर से फ़ायदा उठाने वाले इकोनॉमिक ग्रुप, और कुछ लोगों के कंट्रोल वाले एजेंडा को बनाए रखने और गठबंधन पर टिके रहने वाले पॉलिटिकल एक्टर से विरोध होगा। यह विरोध प्रोसेस में रुकावटों, स्ट्रेटेजिक कमेटियों पर दबाव, गवर्नेबिलिटी के बारे में कहानियों के सेलेक्टिव इस्तेमाल, और नॉर्मेटिव पावर के किसी भी रीडिस्ट्रिब्यूशन को गलत ठहराने की कोशिशों के ज़रिए होता है। यह विरोध टेक्निकल अथॉरिटी को अयोग्य ठहराने की भी कोशिश करेगा, जिसमें ज्ञान के एलीटिज़्म, लोगों के अलग-थलग पड़ने, या बहुत ज़्यादा इंस्टीट्यूशनल रैशनलाइज़ेशन के मॉडल का आरोप लगाया जाएगा। सिस्टम टेक्नीक और डेमोक्रेसी का ऐसे विरोध करेगा जैसे वे एक-दूसरे से मेल नहीं खाते, जबकि असल में, टेक्निकल पहलू को बाहर करने से ठीक उन्हीं को फ़ायदा होता है जो लेजिस्लेशन और पॉलिटिकल बातचीत के ग्रे एरिया में सबसे अच्छा काम करते हैं।

पहले बदलाव के मूवमेंट में लेजिस्लेटिव प्रोसेस की ट्रांसपेरेंसी बढ़ाना, प्रपोज़ल की शुरुआत, इसमें शामिल हितों, उम्मीद के मुताबिक असर, और उनकी तरक्की पर असर डालने वाले एजेंट को समाज के ज़्यादातर लोगों के लिए आसान बनाना शामिल है। जब लोग समझ जाते हैं कि नियम कैसे बनते हैं और उनसे किसे फ़ायदा होता है, तो बड़े सुधारों के लिए एक पॉपुलर बेस बनता है। इसके बाद, हमें नॉर्मेटिव प्रोसेस में टेक्निकल और पार्टिसिपेटरी मैकेनिज़्म की धीरे-धीरे एंट्री को बढ़ावा देना चाहिए। इंडिपेंडेंट एडवाइज़री काउंसिल, ज़रूरी पब्लिक ओपिनियन, ओपन टेक्निकल हियरिंग, सोशल रिप्रेजेंटेशन वाली थीमैटिक कमेटियाँ, और सिटिज़न कंसल्टेशन प्लेटफ़ॉर्म, ऐसे कुल उपायों के तौर पर काम करते हैं जो पारंपरिक स्ट्रक्चर की फ़ैसले लेने की मोनोपॉली को कम करना शुरू करते हैं। हर नए मैकेनिज़्म को यह दिखाना होगा कि टेक्नीक और पार्टिसिपेशन मिलकर सामूहिक हित के फ़ायदे के लिए काम कर सकते हैं। पॉपुलर प्रेशर का मतलब प्रोसेस से जुड़े सुधार, परमानेंट टेक्निकल बॉडीज़ को मज़बूत करना और हितों के टकराव पर ज़्यादा नज़र रखना होना चाहिए। हमें रेगुलेटरी प्रोडक्शन को ओपेक एग्रीमेंट्स पर कम डिपेंडेंट और पब्लिक, ट्रांसपेरेंट और सोशली ऑडिटेबल क्राइटेरिया से ज़्यादा गाइडेड बनाना होगा।

कोई भी समाज पूरी तरह से डेमोक्रेटिक लेजिटिमेसी बनाए नहीं रख सकता जब सामूहिक जीवन को कंट्रोल करने वाले नियमों का निर्माण कुछ ही पावर सेंटर्स में कंसंट्रेटेड रहे। लेकिन, लागू करने की सबसे बड़ी चुनौती स्पेशलाइज़ेशन को ज़बरदस्ती वाली टेक्नोक्रेसी में बदलने से रोकना है। एक्सपर्ट डेमोक्रेसी की जगह नहीं लेता, बल्कि उसे मज़बूत करता है। मौजूदा सिस्टम के विरोध को दूर करने और लेजिटिमेसी बनाए रखने के लिए, राय की पूरी ट्रांसपेरेंसी, इस्तेमाल किए गए सबूतों का खुला पब्लिकेशन, सीमित अधिकार और लगातार सोशल रिव्यू के लिए सिस्टम की गारंटी देना ज़रूरी होगा। एक ऐसा कानून जो ज्ञान से पैदा हो लेकिन सामूहिक जीवन में निहित रहे। एक ऐसा नॉर्म जो गठबंधन की ताकत का प्रोडक्ट बनना बंद कर दे और सोशल जस्टिस का एक तर्कसंगत ज़रिया बन जाए। जब टेक्निकल इंटेलिजेंस लोगों की सेवा करती है, न कि सत्ता की, तो कानून अपना सबसे बड़ा काम फिर से हासिल कर लेता है: स्थिरता, बराबरी और भविष्य के साथ इंसानों के साथ रहने को ऑर्गनाइज़ करना। सबूत और स्पेशलाइज़ेशन पर बने नॉर्म ज़्यादा एक जैसे, पहले से पता चलने वाले और आज की दुनिया की मुश्किलों के हिसाब से ढले होते हैं। इससे इंस्टीट्यूशनल भरोसा मज़बूत होता है, कानूनी उलझनें कम होती हैं, और संकटों और स्ट्रक्चरल चुनौतियों का जवाब देने के लिए पब्लिक सिस्टम की क्षमता में सुधार होता है। आखिर में, सीधे राजनीतिक दबाव की कमी से नॉर्मेटिव प्रोसेस पर निजी हितों का असर कम होता है। मुश्किल समाजों को उतने ही बेहतर रेगुलेटरी फ्रेमवर्क की ज़रूरत होती है। शासन का भविष्य

आम नियमों को बनाने में डेमोक्रेटिक लेजिटिमेसी और काबिल एक्सपर्टीज़ को मिलाने की क्षमता पर तेज़ी से निर्भर करेगा।

18. सरकार के नए स्ट्रक्चर

पुरानी असलियत के लिए बनाए गए स्ट्रक्चर का इस्तेमाल करके सरकार 21वीं सदी की समस्याओं का जवाब कैसे दे सकती है? आज की मुश्किलों और धीमे, बिखरे हुए और बहुत ज़्यादा ब्यूरोक्रेटिक इंस्टीट्यूशनल मॉडल के बीच एक तनाव है। टेक्नोलॉजी में बदलाव, ग्लोबल संकट और तेज़ी से बदलती सामाजिक मांगों वाली दुनिया में, पब्लिक पावर को मैनेज करने का तरीका भी उसी तेज़ी से बदलने की ज़रूरत है।

आज के हालात में, सरकारें हेल्थ, इंफ्रास्ट्रक्चर, शिक्षा, पर्यावरण, डिजिटल सिक्योरिटी और शहरी मोबिलिटी जैसे क्षेत्रों में एक साथ चुनौतियों का सामना कर रही हैं। हालांकि, एडमिनिस्ट्रेटिव स्ट्रक्चर अभी भी वर्टिकल, अलग-अलग हिस्सों में काम करते हैं और सेक्टर के बीच कम इंटीग्रेशन होता है। मौजूदा मॉडल में पब्लिक पॉलिसी को लागू करने में देरी, रिसोर्स की बर्बादी, सेवाओं की कम एफिशिएंसी और सामाजिक और आर्थिक इमरजेंसी के हिसाब से ढलने में मुश्किल महसूस होती है।

समस्या पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की स्ट्रक्चरल सख्ती है। बहुत ज़्यादा हायरार्किकल, अलग-अलग हिस्सों में बंटे और धीमे सिस्टम, जिनमें फैसले लेने में लंबा समय लगता है, एक साथ कई ब्यूरोक्रेसी काम करती हैं, और स्ट्रेटेजिक क्षेत्रों के बीच कम क्रॉस-फंक्शनल कम्युनिकेशन होता है। हेल्थ, एजुकेशन, इंफ्रास्ट्रक्चर, सोशल असिस्टेंस, सिक्योरिटी और इकोनॉमिक प्लानिंग अलग-अलग हिस्सों की तरह काम करते हैं, भले ही वे जिन प्रॉब्लम्स का सामना करते हैं, वे असल में एक-दूसरे पर निर्भर होती हैं। इसका नतीजा यह होता है कि जवाब बनाने और उन्हें लागू करने में धीरे-धीरे काम होता है। इसका आखिरी असर यह होता है कि सरकार और सोशल रियलिटी के बीच दूरी बढ़ती जाती है।

मुश्किल प्रॉब्लम्स को सॉल्व करने के बजाय, पारंपरिक स्ट्रक्चर उन्हें लंबा खींचता है। इसकी कीमत वे लोग चुकाते हैं जो इज्ज़त से जीने के लिए सरकार की फुर्ती पर निर्भर रहते हैं: मेडिकल केयर का इंतज़ार कर रहे परिवार, बेसिक इंफ्रास्ट्रक्चर का इंतज़ार कर रहे समुदाय, रेगुलेटरी देरी से प्रभावित वर्कर्स, और बिखरी हुई पब्लिक सर्विसेज़ के शिकार नागरिक। जब

ब्यूरोक्रेसी अपने आप में एक मकसद बन जाती है, तो समाज की असल ज़िंदगी पीछे छूट जाती है। इस मॉडल को बनाए रखने से जो लोग फायदा उठाते हैं, वे एडमिनिस्ट्रेटिव एलीट और अंदरूनी पावर स्ट्रक्चर हैं जिन्हें प्रोसेस की अस्पष्टता, कंट्रोल मैकेनिज्म के तौर पर धीमेपन, और खास जगहों पर जानकारी के जमावड़े से फायदा होता है। इंस्टीट्यूशनल सख्ती उन पॉलिटिकल ग्रुप्स के भी फेवर में होती है जो पब्लिक मशीन का इस्तेमाल असर डालने, मोलभाव करने और गठबंधन बनाए रखने के लिए करते हैं।

हमें फ्लेक्सिबल, इंटीग्रेटेड और डेटा-ड्रिवन एडमिनिस्ट्रेटिव स्ट्रक्चर पर आधारित अप्रोच की ज़रूरत है। इस प्रपोज़ल में सरकार को आपस में जुड़े फंक्शनल नेटवर्क के ज़रिए फिर से बनाना शामिल है, जिसमें सख्त वर्टिकल लॉजिक की जगह एक सिस्टमिक और अडैप्टिव आर्किटेक्चर लाया जाएगा। अलग-अलग डिपार्टमेंट के बजाय, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एक लिविंग सिस्टम की तरह काम करना शुरू करेगा, जो जानकारी शेयर करने, जोखिमों का अंदाज़ा लगाने और सामूहिक ज़रूरतों पर ज़्यादा सटीक तरीके से जवाब देने में सक्षम होगा। इसे साफ़ स्टेज में लागू किया जाना चाहिए। पहले स्टेज में मिशन के हिसाब से क्रॉस-फंक्शनल मैनेजमेंट सेंटर बनाना शामिल है, जिन्हें प्रिवेंटिव हेल्थ, फूड सिक्योरिटी, शहरी विकास, प्रोडक्टिव इनोवेशन, असमानता कम करने जैसी ठोस समस्याओं के आस-पास ऑर्गनाइज़ किया जाएगा। ये सेंटर कई एरिया के एक्सपर्ट को टेक्निकल ऑटोनॉमी और इंटीग्रेटेड लक्ष्यों के साथ एक साथ लाते हैं। दूसरा स्टेज एक यूनिफाइड डिजिटल गवर्नेंस इंफ्रास्ट्रक्चर बनाना है, जिससे एरिया के बीच डेटा इंटरऑपरेबिलिटी, सोशल इंडिकेटर की रियल-टाइम मॉनिटरिंग, पब्लिक रिसोर्स की ट्रैकिंग और लोकल, रीजनल और नेशनल लेवल के बीच ऑपरेशनल कोऑर्डिनेशन हो सके। इस मॉडल में, टेक्नोलॉजी पॉलिटिक्स की जगह नहीं लेती है, बल्कि फ़ैसले लेने में रुकावट को कम करती है और अंदाज़ा लगाने की क्षमता बढ़ाती है। तीसरा स्टेज ऑपरेशनल डीसेंट्रलाइज़ेशन है, जो इस प्रपोज़ल को पहले से बने रीडिस्ट्रिब्यूटिव मॉडल से जोड़ता है। लोकल मैनेजमेंट यूनिट्स को पॉलिसी को तेज़ी से लागू करने के लिए ऑटोनॉमी मिलनी चाहिए, जो हमेशा पब्लिक परफॉर्मेंस मेट्रिक्स, इंडिपेंडेंट ऑडिटिंग और कम्युनिटी सोशल कंट्रोल से जुड़ी हो।

यह साफ़ है कि एडमिनिस्ट्रेटिव पावर के एलीट इस बदलाव का ज़ोरदार विरोध करेंगे। इसका विरोध उन सेक्टर्स से होगा जो सख़्त स्ट्रक्चर, कम्पार्टमेंटलाइज़ेशन पर आधारित करियर और जानकारी की मोनोपॉली के ज़रिए पावर को एक जगह इकट्ठा करने के आदी हैं। पारंपरिक ब्यूरोक्रेसी न सिर्फ़ आदत की वजह से, बल्कि इंस्टीट्यूशनल इंटरेस्ट की वजह से भी विरोध करती

है, क्योंकि काबिलियत का बँटवारा, प्रोसेस की धीमी रफ़्तार और अंदरूनी फ्लो की अस्पष्टता असर बनाए रखने के तरीकों के तौर पर काम करती है। एडमिनिस्ट्रेटिव मशीन ऐसे टेक्निकल ज़ोन बनाती है जहाँ पहुँचना मुश्किल होता है, जो लोगों की भागीदारी और असरदार निगरानी दोनों को दूर करते हैं। एलीट का विरोध प्रोसेस में रुकावटों, बहुत ज़्यादा फॉर्मलिज़्म, न झुकने वाले हायरार्की के बचाव और इंस्टीट्यूशनल गड़बड़ी के कथित रिस्क के बारे में नैरेटिव बनाने से दिखता है। इंटीग्रेशन, ट्रांसपेरेंसी और डीसेंट्रलाइज़ेशन को बढ़ाने वाले सुधारों को पब्लिक सर्विस की स्टेबिलिटी के लिए खतरे के तौर पर पेश किया जा सकता है, जबकि असल में, मकसद अंदरूनी फैसले लेने की जगहों को बचाना है जिन्हें आसानी से ऑडिट नहीं किया जा सकता। बदलाव का पहला कदम एडमिनिस्ट्रेटिव फ्लो, हर बॉडी की काबिलियत और फैसले लेने के पॉइंट्स की मैपिंग करना और उन्हें ट्रांसपेरेंट बनाना है। जब सोशल मेजोरिटी और पब्लिक एजेंट खुद यह देख पाते हैं कि रुकावटें, ओवरलैप और इन्फॉर्मेशनल मोनोपॉली कहाँ हैं, तो बदलाव का आधार बनता है। इसके बाद, हमें इंस्टीट्यूशनल इंटीग्रेशन के प्रोग्रेसिव सुधारों को बढ़ावा देना चाहिए। उदाहरण हैं प्रोसेस का डिजिटलाइजेशन, बॉडीज़ के बीच इंटरऑपरेबिलिटी, फालतू काबिलियत का रिव्यू, एक्टिव डेटा ट्रांसपेरेंसी और सर्विसेज़ का डीसेंट्रलाइजेशन, जो शुरुआती कदम के तौर पर काम करते हैं और बिना अचानक रुकावट पैदा किए कम्पार्टमेंटलाइजेशन को कम करते हैं। हर तरक्की को एफिशिएंसी, रिस्पॉन्स टाइम और नागरिकों तक पहुंच में ठोस फायदे दिखाने की ज़रूरत है।

पॉपुलर और एडमिनिस्ट्रेटिव दबाव को इंटरनल गवर्नेंस के नए मॉडल में बदलना चाहिए, जिसमें पब्लिक परफॉर्मेंस का लगातार इवैल्यूएशन, सुपरवाइजरी बोर्ड, सिटिज़न ऑडिटिंग और सरकार के स्ट्रेटेजिक एरिया के बीच ज़्यादा इंटीग्रेशन हो। सेंट्रल स्ट्रेटेजी यह है कि पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन को स्ट्रक्चरल सेल्फ-प्रिजर्वेशन की ओर कम और कलेक्टिव प्रॉब्लम के असरदार सॉल्यूशन पर ज़्यादा फोकस किया जाए।

जब तक एडमिनिस्ट्रेटिव स्ट्रक्चर धीमेपन, आइसोलेशन और इन्फॉर्मेशन के कंसंट्रेशन को दोहराने के लिए ऑर्गनाइज़्ड रहेगा, तब तक कोई भी सोशल ट्रांसफॉर्मेशन एजेंडा कायम नहीं रह सकता। पावर के किसी भी असली रीडिस्ट्रिब्यूशन के लिए स्टेट को अंदर से सुधारना एक ज़रूरी शर्त है। खास अधिकार वाले लोगों के विरोध को दूर करने के लिए, इस बदलाव में कानूनी सुधार, सरकारी कर्मचारियों की गहरी ट्रेनिंग और सिर्फ़ काम करने की ताकत ही नहीं, बल्कि सोशल एफिशिएंसी से जुड़े इंसेंटिव सिस्टम को मिलाना होगा। सुधार को पॉलिटिकल कब्ज़े से बचाना भी

ज़रूरी होगा, ताकि यह पक्का हो सके कि एडमिनिस्ट्रेटिव फ्लेक्सिबिलिटी मनमाने फैसले लेने में न बदल जाए।

हमें ऐसी सरकार की वकालत करनी चाहिए जो देर से रिएक्ट करना बंद करे और कलेक्टिव इंटेलिजेंस के साथ पहले से अनुमान लगाना, इंटीग्रेट करना और काम करना शुरू करे। नया एडमिनिस्ट्रेटिव स्ट्रक्चर सिर्फ़ ऑर्गेनाइज़ेशनल चार्ट में बदलाव नहीं है, यह स्टेट का सोशल जस्टिस के एक जीते-जागते ज़रिया में बदलना है, जो असल दुनिया की मुश्किलों के साथ तालमेल बिठा सके और लोगों की ज़रूरतों को तेज़ी से और सही तरीके से पूरा कर सके। ज़्यादा इंटीग्रेटेड स्ट्रक्चर फालतू कामों को कम करते हैं, फैसले लेने में तेज़ी लाते हैं और पब्लिक रिसोर्स के इस्तेमाल में एफिशिएंसी बढ़ाते हैं। इसके अलावा, टेक्नोलॉजी और एडमिनिस्ट्रेटिव इंटेलिजेंस का इस्तेमाल ज़्यादा सटीक प्लानिंग, नतीजों की लगातार मॉनिटरिंग और लोगों के लिए ज़्यादा ट्रांसपेरेंसी की इजाज़त देता है। इससे इंस्टीट्यूशनल भरोसा मज़बूत होता है और सरकार की सिर्फ़ रिएक्ट करने के बजाय बचाव के तौर पर काम करने की क्षमता में सुधार होता है। जो संस्थाएं आगे नहीं बढ़तीं, वे विकास में रुकावट बन जाती हैं। जो संस्थाएं समझदारी से खुद को फिर से बनाती हैं, वे मिलकर बदलाव लाने का ज़रिया बन जाती हैं।

19. पॉलिटिकल मैनेजमेंट

पॉलिटिक्स को हमेशा के झगड़े के मैदान से आम भलाई को कोऑर्डिनेट करने वाले एक असली सिस्टम में कैसे बदला जा सकता है? यह मुख्य सवाल सिर्फ़ इस बारे में नहीं है कि कौन राज करता है, बल्कि यह भी है कि समय के साथ फ़ैसलों की प्लानिंग कैसे की जाती है, उन्हें कैसे लागू किया जाता है, मॉनिटर किया जाता है और उनमें सुधार किया जाता है। मुश्किल समाजों में, पॉलिटिक्स सिर्फ़ बातचीत या पावर के बदलने तक सीमित नहीं रह सकती: इसे सोशल, इकोनॉमिक और इंस्टीट्यूशनल ऑर्गनाइज़ेशन के एक ठोस सिस्टम के तौर पर काम करने की ज़रूरत है।

अभी, पॉलिटिकल मैनेजमेंट सीधे तौर पर पब्लिक बजट, हेल्थ, एजुकेशन, सिक्योरिटी, इंफ्रास्ट्रक्चर और मौकों के डिस्ट्रीब्यूशन जैसे ज़रूरी एरिया पर असर डालता है। इसका असर रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर तुरंत पड़ता है: एक एडमिनिस्ट्रेटिव फ़ैसला शहरी मोबिलिटी को बेहतर बना सकता है, सर्विसेज़ तक पहुँच बढ़ा सकता है, या, इसके उलट, असमानताओं को और गहरा

कर सकता है। पॉलिटिकल मैनेजमेंट की क्वालिटी राज्य की एफिशिएंसी और इंस्टीट्यूशन्स पर लोगों के भरोसे को तय करती है। जब पॉलिटिक्स काम करती है, तो समाज आगे बढ़ता है। जब यह फेल होती है, तो इसका खर्च सब पर पड़ता है।

अभी के मॉडल के साथ समस्या यह है कि इसमें शॉर्ट टर्म का दबदबा है और स्ट्रेटेजिक कंटिन्यूटी का लेवल कम है। इसका कारण चुनावी दौर है जो तुरंत असर, तेज़ी से लोगों को दिखने और कम समय में राजनीतिक रूप से फ़ायदेमंद नतीजे देने पर फ़ोकस करने वाले फ़ैसलों को बढ़ावा देते हैं। इसके साथ ही, अलग-अलग एडमिनिस्ट्रेटिव क्षेत्रों में बँटवारा होने से मुश्किल पॉलिसी को कोऑर्डिनेट करना मुश्किल हो जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि स्ट्रक्चरल प्रोजेक्ट रुक जाते हैं, कोशिशें दोहराई जाती हैं, और काम करने की क्षमता कम हो जाती है, जिससे उन समस्याओं को हल करने में नाकामी मिलती है, जिनके लिए अपने स्वभाव से ही मीडियम और लॉन्ग-टर्म प्लानिंग की ज़रूरत होती है।

फिर पॉलिटिक्स संकटों को रोकने के बजाय उन पर रिएक्ट करना शुरू कर देती है। इसकी कीमत पूरे समाज को चुकानी पड़ती है: अधूरे हेल्थ सिस्टम के साथ रहने वाले परिवार, रुके हुए एजुकेशनल सुधारों से प्रभावित छात्र, अस्थिर आर्थिक पॉलिसी से प्रभावित मज़दूर, और हर सरकार बदलने के साथ अधूरे या छोड़े गए कामों के शिकार शहर। दर्द हमेशा नए सिरे से शुरू करने की भावना, सामूहिक निराशा और संस्थानों पर से भरोसा खोने में होता है। जिन प्रोजेक्ट से एक दशक में असलियत बदलने की उम्मीद होती है, वे अक्सर एक भी टर्म नहीं टिक पाते। इस मॉडल से फ़ायदा उठाने वालों में पार्टी के एलीट और पॉलिटिकल ग्रुप शामिल हैं, जिन्हें शॉर्ट टर्म के लॉजिक, मौजूदा पॉलिसी के सिंबॉलिक रीइनॉगरेशन और स्टेट को इलेक्टोरल प्लेटफ़ॉर्म के तौर पर इस्तेमाल करने से फ़ायदा होता है। इस मामले में, रुकावट कोई एडमिनिस्ट्रेटिव फ़ेलियर नहीं है, यह पावर का एक मैकेनिज़्म बन जाता है।

एक फ़ंक्शनल अप्रोच, जो साइक्लिकल रुकावटों से सुरक्षित हो, ज़रूरी हो जाता है। प्रपोज़ल पॉलिटिकल मैनेजमेंट को तीन इंटीग्रेटेड लेवल में स्ट्रक्चर करने का है: दस साल की स्ट्रेटेजिक प्लानिंग, क्वार्टरली टारगेट के ज़रिए एडमिनिस्ट्रेटिव एग्ज़िक्यूशन, और ट्रांसपेरेंट इंडिकेटर्स के ज़रिए परमानेंट पब्लिक इवैल्यूएशन। पहली लेयर 10 साल की स्ट्रेटेजिक प्लान है। सरकार के हर एरिया, जैसे हेल्थ, एजुकेशन, हाउसिंग, मोबिलिटी, फ़ूड सिक्योरिटी, प्रोडक्टिव इनोवेशन, और सस्टेनेबिलिटी, के दस साल के समय में मेज़रेबल स्ट्रक्चरल ऑब्जेक्टिव होने चाहिए। इन ऑब्जेक्टिव्स को एक स्ट्रेटेजिक कंटिन्यूटी लॉ से डिफाइन करने की ज़रूरत है, जिससे

उनकी मनमानी रुकावट इंस्टीट्यूशनली इल्लीगल हो जाए। यह उन पॉलिटिकल एलीट के विरोध को दूर करने के लिए ज़रूरी है जो हर चुनाव के साथ एजेंडा को पूरी तरह बदलने के आदी हैं।

दूसरी लेयर ज़रूरी क्वार्टरली और एनुअल टारगेट के ज़रिए एडमिनिस्ट्रेटिव एग्ज़िक्यूशन है। प्रैक्टिकल तौर पर, हर लंबे समय के मकसद को सालाना टारगेट और तिमाही ऑपरेशनल माइलस्टोन में बांटना होगा, जो बजट, शेड्यूल और टेक्निकल मैनेजर को जोड़ते हैं। इससे स्ट्रेटेजिक विज़न ठोस और मापने लायक काम में बदल जाता है। तीसरा है एक परमानेंट पब्लिक इवैल्यूएशन जिसमें सभी इंडिकेटर पब्लिक डिजिटल डैशबोर्ड पर उपलब्ध होने चाहिए, जो रियल टाइम में लोगों के लिए एक्सेसिबल हों, जिससे प्रोग्रेस, देरी, लागत, सोशल असर और लक्ष्य हासिल करने की मॉनिटरिंग हो सके। यहां ट्रांसपेरेंसी, लेजिटिमेसी और पार्टी के कब्ज़े से बचाने का एक तरीका है। इसके अलावा, एक्सपर्ट, कम्युनिटी के रिप्रेजेंटेटिव, ऑडिटिंग बॉडी और सोशल ऑब्जर्वेटरी से बनी इंडिपेंडेंट टेक्निकल मॉनिटरिंग काउंसिल बनाने का प्रस्ताव है। इन काउंसिल का काम नतीजों का इवैल्यूएशन करना, पब्लिक रिपोर्ट जारी करना और बिना किसी सीधे पार्टी के दखल के सुधार की सलाह देना होगा।

उन ग्रुप्स से साफ़ विरोध होगा जो हर इंस्टीट्यूशनल साइकिल के साथ सरकारी नैरेटिव को फिर से बनाने, अलायंस को फिर से बनाने और अंदरूनी असर को फिर से बांटने के लिए पॉलिटिकल उतार-चढ़ाव पर निर्भर हैं। बदलाव का इस्तेमाल नए सिरे से बनाने के डेमोक्रेटिक तरीके के तौर पर नहीं, बल्कि पिछले एजेंडा को खत्म करने, बजट की प्राथमिकताओं को फिर से तय करने और पॉलिटिकल वफ़ादारी के नेटवर्क को फिर से बनाने के मौके के तौर पर किया जाता है। प्रोग्राम में रुकावट पावर का एक ज़रिया बन जाती है। स्ट्रेटेजिक कंटिन्यूटी स्टेट के चुनावी इस्तेमाल की क्षमता को कम करती है, और इसलिए पार्टी स्ट्रक्चर और ऐसे लोगों से काफ़ी विरोध का सामना करना पड़ेगा जिनकी ताकत हमेशा टूटने पर निर्भर करती है, जो स्टेबल मैनेजमेंट मॉडल को गवर्नेंस, पॉलिटिकल फ्लेक्सिबिलिटी या एजेंडा बनाने की आज़ादी के लिए खतरा बना देगा। विरोध लेजिस्लेटिव रुकावट, नैरेटिव विवादों और हालात के हिसाब से प्राथमिकताओं को फिर से तय करने की कोशिशों से दिखेगा।

सबसे पहले, हमें स्टेट की स्ट्रेटेजिक प्लानिंग को तुरंत होने वाले चुनावी साइकिल से धीरे-धीरे अलग करना होगा। इसका मतलब है ऐसे कई साल के प्लान बनाना जो लागू हों, लंबे समय के पब्लिक लक्ष्य और ट्रांसपेरेंट इंडिकेटर जो सरकार में बदलाव के बावजूद एक्टिव रहें। जब समाज का ज़्यादातर हिस्सा लगातार मकसदों को फॉलो करता है, तो उनके लिए शॉर्ट-टर्म नैरेटिव

झगड़ों में फंसना ज़्यादा मुश्किल हो जाता है। तब, परमानेंट टेक्निकल स्ट्रक्चर को मज़बूत करने की ज़रूरत होती है। इंडिपेंडेंट स्ट्रेटेजिक काउंसिल, इंटर-गवर्नमेंटल कमीशन, गोल मॉनिटरिंग बॉडी और पब्लिक मॉनिटरिंग प्लेटफॉर्म बनाने से एडमिनिस्ट्रेटिव उतार-चढ़ाव कम हो सकता है। हर उपाय से यह दिखाना होगा कि मैनेजमेंट स्टेबिलिटी डेमोक्रेसी को खत्म नहीं करती बल्कि ज़रूरी पॉलिसी को स्टेट के मौकापरस्त इस्तेमाल से बचाती है। सोशल प्रेशर को ऐसे लीगल फ्रेमवर्क में बदलना चाहिए जो स्ट्रक्चरिंग पॉलिसी की मिनिमम कंटिन्यूटी की गारंटी दे, पब्लिक प्रोग्राम को मनमाने ढंग से पलटने से रोके, और समय-समय पर अकाउंटेबिलिटी के लिए मैकेनिज्म बनाए। सेंट्रल स्ट्रेटेजी यह पक्का करना है कि डेमोक्रेटिक बदलाव कलेक्टिव प्लानिंग की रीढ़ को खत्म किए बिना जायज़ प्रायोरिटी पर काम करे।

कोई भी समाज तब तक भविष्य नहीं बना सकता जब तक स्टेट इलेक्टोरल साइकिल और असर के लिए अंदरूनी झगड़ों के हिसाब से परमानेंटली रीऑर्गेनाइज़्ड न हो जाए। पॉलिटिकल मैनेजमेंट को लगातार रीस्टार्ट का फील्ड बनना बंद करना होगा और आम भलाई के पक्ष में स्ट्रेटेजिक कंटिन्यूटी का एक ज़रिया बनना होगा। प्रपोज़्ड स्ट्रक्चर को कंटिन्यूटी के नॉर्मेटिव फ्रेमवर्क, सरकारों के बीच ज़रूरी ट्रांज़िशन क्लॉज़ और इंडिपेंडेंट पब्लिक ऑडिट से कानूनी तौर पर सुरक्षित रखने की ज़रूरत है। यह प्रोजेक्ट डेमोक्रेटिक बदलाव को खत्म नहीं करता, लेकिन यह लीडरशिप में बदलाव को कलेक्टिव प्लानिंग को खत्म करने से रोकता है।

यहीं से पॉलिटिकल उम्मीद अपने सबसे ठोस रूप में पैदा होती है: एक ऐसी सरकार जो इम्प्रोवाइज़ेशन से जीना बंद कर दे और विज़न, एग्ज़िक्यूशन और परमानेंट करेक्शन के ज़रिए काम करना शुरू कर दे। सच्चे सोशल जस्टिस के लिए समय, कंटिन्यूटी और इंस्टीट्यूशनल कमिटमेंट की ज़रूरत होती है। इसके बिना, बदलाव का हर वादा चुनावी कैलेंडर का बंधक बनकर रह जाता है। पब्लिक इंडिकेटर्स से जुड़े लक्ष्यों को अपनाने से एडमिनिस्ट्रेशन के बीच कंटिन्यूटी बढ़ती है, इम्प्रोवाइज़्ड फ़ैसले कम होते हैं, और इंस्टीट्यूशनल अकाउंटेबिलिटी मज़बूत होती है। रियल-टाइम ट्रांसपेरेंसी लोगों को बजट एग्ज़िक्यूशन, डेडलाइन के पालन और पॉलिसी के सोशल असर पर नज़र रखने की इजाज़त देती है, जबकि समय-समय पर टेक्निकल इवैल्यूएशन से बर्बादी कम होती है और फ़ैसलों की क्वालिटी बेहतर होती है। इस तरह, पॉलिटिकल मैनेजमेंट सिर्फ़ बयानबाज़ी पर निर्भर रहना बंद कर देता है और ठोस नतीजों से मापा जाने लगता है। समाजों का भविष्य वादों पर कम और इरादे को कुशल, लगातार और ट्रांसपेरेंट मैनेजमेंट में बदलने की क्षमता पर ज़्यादा निर्भर करेगा।

20. प्रोडक्शन की विज़िबिलिटी

कोई समाज पैसे को सही तरीके से कैसे बांट सकता है अगर उसे ठीक से पता ही न हो कि वह क्या बनाता है, किसके लिए बनाता है, और वह प्रोडक्शन आखिर में कहां जाता है? प्रोडक्शन रिकॉर्ड का मुद्दा किसी भी इकोनॉमिक और सोशल रीऑर्गनाइज़ेशन प्रोजेक्ट के लिए सेंट्रल होता है, क्योंकि कलेक्टिव रिसोर्स का मैनेजमेंट सबसे पहले और सबसे ज़रूरी, भरोसेमंद जानकारी पर निर्भर करता है। बिना रिकॉर्डिंग के प्रोडक्शन करना अंधेरे में मैनेज करना है। रिकॉर्डिंग साफ तौर पर प्रोडक्शन को प्लानिंग, ट्रांसपेरेंसी और असली डिस्ट्रीब्यूशन कैपेसिटी में बदल देती है।

अभी, एग्रीकल्चरल, इंडस्ट्रियल, एनर्जी और लॉजिस्टिक्स प्रोडक्शन का ज़्यादातर डेटा कंपनियों, सरकारों, प्राइवेट सेक्टर और अलग-अलग लोकल बेस के बीच बंटा हुआ है। इससे सामान, कच्चे माल और सरप्लस के असली फ्लो को देखना मुश्किल हो जाता है, जिससे सप्लाई, कीमतों और इन्वेस्टमेंट के बारे में फैसले लेने में दिक्कत होती है। विज़िबिलिटी की कमी सीधे तौर पर रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर असर डालती है: रिकॉर्ड रखने में फेलियर से खाने की बर्बादी, सप्लाई चेन में गड़बड़ी, आर्टिफिशियल कमी और इलाकों के बीच रिसोर्स का खराब डिस्ट्रीब्यूशन होता है।

अभी के मॉडल की समस्या प्रोडक्टिव जानकारी की ओपेसिटी और टुकड़ों में बंटी हुई है। इसका कारण सभी सेक्टर, इलाकों और लॉजिस्टिक्स चेन में इंटीग्रेटेड मॉनिटरिंग और डेटा स्टैंडर्डाइज़ेशन सिस्टम की कमी है। खेती, इंडस्ट्री, ट्रांसपोर्टेशन, स्टोरेज, डिस्ट्रीब्यूशन और कॉमर्स अलग-अलग डेटाबेस, अलग-अलग तरीकों और ट्रांसपेरेंसी के अलग-अलग लेवल के साथ काम करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि डिमांड का अनुमान लगाने, रुकावटों का पता लगाने और सरप्लस की पहचान करने में मुश्किल होती है, जिससे आर्थिक अक्षमता, लागत में बढ़ोतरी और सप्लाई संकट पर जल्दी से जवाब न दे पाना होता है।

जब प्रोडक्शन सिस्टम के हिसाब से दिखाई नहीं देता है, तो पूरा डिस्ट्रीब्यूशन स्ट्रक्चर अपनी एफिशिएंसी खो देता है। समाज इसकी कीमत चुकाता है, खासकर सबसे कमजोर आबादी, जो सबसे पहले महंगाई, ज़रूरी प्रोडक्ट की कमी, सप्लाई चेन में रुकावट और कीमतों में अचानक उतार-चढ़ाव से परेशान होती है। यह परेशानी खाने की बढ़ती लागत, दवाओं की कमी, स्ट्रेटेजिक इनपुट के ठप होने और मौसम, हेल्थ या लॉजिस्टिक इमरजेंसी के प्रति कमजोर होने के रूप में होती है। इस अपारदर्शी मॉडल से फायदा उठाने वालों में आर्थिक बिचौलिए, लॉजिस्टिक कंसंट्रेशन

ग्रुप और वे सेक्टर शामिल हैं जिन्हें जानकारी में अंतर से फायदा होता है। जब सिर्फ़ कुछ एजेंट ही प्रोडक्शन और इन्वेंट्री का असली फ्लो देख पाते हैं, तो सट्टेबाज़ी, सप्लाई को बनावटी तरीके से बनाए रखने और कीमतों में हेरफेर के लिए जगह बन जाती है। ओपेसिटी आर्थिक ताकत के जमावड़े के लिए एक इनडायरेक्ट टूल का काम करती है।

इस सॉल्यूशन में एक नेशनल और इंटर-कम्युनिटी डिजिटल प्रोडक्शन रजिस्ट्रेशन सिस्टम बनाना शामिल है, जिसे सेक्टर, इलाके और लॉजिस्टिक्स चेन के हिसाब से इंटीग्रेट किया गया है। हर प्रोडक्शन यूनिट जैसे कि खेत, इंडस्ट्री, डिस्ट्रीब्यूशन सेंटर, कोऑपरेटिव और कम्युनिटी हब, एक ऑडिटेबल पब्लिक प्लेटफॉर्म पर रियल टाइम में प्रोड्यूस की गई मात्रा, उपलब्ध स्टॉक, डेस्टिनेशन, डिमांड फोरकास्ट और खाली कैपेसिटी को रजिस्टर करेंगे। पहला स्टेज प्रोडक्शन रजिस्ट्रेशन प्रोटोकॉल का स्टैंडर्डाइज़ेशन है, जिससे सेक्टर और इलाके के हिसाब से एक जैसी कैटेगरी बनाई जाती हैं। दूसरा स्टेज टेक्नोलॉजिकल इंटीग्रेशन है: लॉजिस्टिक्स सेंसर, ऑटोमेटेड रिपोर्ट, इन्वेंट्री ट्रैकिंग सिस्टम और प्रोड्यूसर, ट्रांसपोर्टर और डिस्ट्रीब्यूशन सेंटर के बीच इंटरऑपरेबल प्लेटफॉर्म। तीसरा स्टेज सिस्टम को पिछले चैप्टर में बनाए गए पॉलिटिकल और टैक्स मैनेजमेंट से जोड़ता है। पब्लिक अथॉरिटी, कम्युनिटी काउंसिल और रीडिस्ट्रिब्यूटिव मैनेजर, रीयल टाइम में, इलाके के हिसाब से प्रोडक्शन, सरप्लस और डेफिसिट को देख पाएंगे, जिससे रिसोर्स का तेज़ी से रीएलोकेशन, प्रायोरिटी ट्रांसपोर्ट और रुकावटों को प्रिवेंटिव करेक्शन किया जा सकेगा।

आर्थिक ताकत वाले अमीर लोग इस मॉडल का कड़ा विरोध करेंगे। यह विरोध उन ग्रुप्स से आता है जिन्हें इन्वेंट्री में पारदर्शिता, स्ट्रेटेजिक प्रोडक्ट रिटेंशन और कमी पर अटकलों से फायदा होता है। बड़े लॉजिस्टिक्स एजेंट, कमर्शियल बिचौलिए और सामान के सर्कुलेशन से जुड़े फाइनेंशियल सेक्टर पूरी ट्रांसपेरेंसी के खिलाफ दबाव डालेंगे, कमर्शियल सीक्रेसी, ऑपरेशनल कॉस्ट या कॉम्पिटिटिवनेस के लिए कथित रिस्क का आरोप लगाएंगे। विजिबिलिटी की कमी सिर्फ एक टेक्निकल प्रॉब्लम नहीं है, बल्कि आर्टिफिशियल वैल्यूएशन, मार्जिन कंसंट्रेशन और सप्लाई में हेरफेर के लिए एक जानबूझकर किया गया मैकेनिज्म है। विरोध प्रोडक्शन फ्लो के कॉम्प्लेक्साइजेशन और इन्फॉर्मेशनल फ्रैगमेंटेशन पर भी है। लंबी चेन, कई बिचौलिए और नॉन-इंटीग्रेटेड सिस्टम कम ऑडिटेबिलिटी वाले एरिया को पसंद करते हैं, जिससे समाज के लिए यह समझना मुश्किल हो जाता है कि कहां काफी प्रोडक्शन है, कहां असली रुकावटें हैं और कहां कमी पैदा की जा रही है या उसका आर्थिक रूप से फायदा उठाया जा रहा है। इसलिए, पारदर्शिता आर्थिक ताकत का एक जरिया बन जाती है।

इस बदलाव को छोटे, पक्के और टेक्निकली कुल मिलाकर कदमों में आगे बढ़ाने की जरूरत है। सबसे पहले, हमें स्ट्रेटेजिक सेक्टर्स में प्रोडक्शन, इन्वेंट्री, डिस्ट्रीब्यूशन और कंजम्प्शन को ट्रैक करने के लिए पब्लिक और इंटरऑपरेबल मैकेनिज्म बनाने होंगे। जब समाज के ज़्यादातर लोग और पब्लिक बॉडीज़ खाने, एनर्जी, दवाइयों, इंडस्ट्रियल इनपुट और ज़रूरी चीज़ों के असली फ्लो को देखना शुरू करते हैं, तो सट्टेबाजी के लिए जगह बहुत कम हो जाती है। इसके बाद, हमें प्रोड्यूसर, डिस्ट्रीब्यूटर, लॉजिस्टिक्स सेंटर और रेगुलेटरी स्ट्रक्चर के बीच धीरे-धीरे इंटीग्रेशन लागू करना चाहिए। यूनिफाइड डिजिटल प्लेटफॉर्म, ज़रूरी समय-समय पर रिपोर्ट, बैच ट्रेसेबिलिटी, क्रॉस-ऑडिटिंग और स्टैंडर्ड डेटा शेयरिंग शुरुआती कदम हैं जो प्रोडक्शन सिस्टम को अचानक रोके बिना ट्रांसपेरेंसी बढ़ाते हैं। पॉपुलर और टेक्निकल दबाव को परमानेंट रेगुलेटरी फ्रेमवर्क, पब्लिक मॉनिटरिंग सिस्टम और सोशल पार्टिसिपेशन वाले इकोनॉमिक ओवरसाइट बोर्ड में बदलना चाहिए। मुख्य स्ट्रैटेजी यह है कि प्रोडक्शन और कमी की जानकारी कुछ प्राइवेट एजेंट तक ही सीमित न रहे। जब विज़िबिलिटी ही पब्लिक इंफ्रास्ट्रक्चर बन जाती है, तो यह अंदाज़ा लगाने की क्षमता कि किस चीज़ की कमी है, स्ट्रक्चरल रूप से कम हो जाती है।

जब कमी को प्रॉफिट और पावर के लिए एक मैकेनिज्म में बदल दिया जाता है, तो कोई भी इकॉनमी लेजिटिमेसी बनाए नहीं रख सकती। प्रोडक्शन को विज़िबल बनाना डिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस, प्राइस स्टेबिलिटी और कलेक्टिव सॉवरेनिटी के लिए ज़रूरी है। प्रस्तावित सिस्टम में पब्लिक ट्रांसपेरेंसी को सेंसिटिव इंडिविजुअल डेटा की सुरक्षा के साथ जोड़ना चाहिए, ताकि कलेक्टिव इंटरेस्ट से कॉम्पिटिशन किए बिना लेजिटिमेट कॉम्पिटिटिवनेस बनी रहे। इंडिपेंडेंट ऑडिट, गड़बड़ियों का पता लगाने के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, और कम रिपोर्टिंग या जानबूझकर हेरफेर के खिलाफ सख्त सज़ा ज़रूरी होगी। लक्ष्य सिर्फ़ इकोनॉमिक एफिशिएंसी ही नहीं है, बल्कि रोकथाम वाला डिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस भी है। जब कमी पहले ही सोशल संकट में बदल चुकी हो, तो उस पर रिएक्ट करने के बजाय, सिस्टम रुकावटों का अंदाज़ा लगाने और लोगों पर मुसीबत आने से पहले एक्शन लेने की इजाज़त देता है।

जब प्रोडक्शन दिखने लगता है, तो रीडिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस एक अमूर्त वादा नहीं रह जाता और सामूहिक जीवन की रक्षा के लिए एक ठोस सिस्टम के तौर पर काम करने लगता है। इंटीग्रेटेड और अप-टू-डेट डेटा के साथ, सरप्लस को तेज़ी से रीडिस्ट्रिब्यूट करना, बर्बादी कम करना, कमी का अंदाज़ा लगाना और ज़्यादा सटीकता के साथ इन्वेस्टमेंट की प्लानिंग करना मुमकिन हो जाता है। रिकॉर्ड की ट्रांसपेरेंसी सोशल कंट्रोल को मज़बूत करती है और इकोनॉमिक एजेंट्स के बीच

जानकारी की असमानता को कम करती है, जिससे सप्लाई और कीमत में आर्टिफिशियल हेरफेर को रोका जा सकता है। प्रोडक्शन सिर्फ़ एक इकोनॉमिक नतीजा नहीं रह जाता और कम्युनिटी का एक स्ट्रेटेजिक एसेट बन जाता है। प्रोडक्शन को रिकॉर्ड करना एक समाज की खुद का ख्याल रखने की क्षमता को रिकॉर्ड करना है। जब जो बनाया जाता है वह पूरी तरह से दिखने लगता है, तो भविष्य इम्प्रोवाइज़ेशन पर निर्भर रहना बंद कर देता है और ज्ञान, प्रेडिक्टेबिलिटी और सामूहिक ज़िम्मेदारी पर बनने लगता है।

पार्ट IV — प्रोडक्शन, लेबर, और रिसोर्स

21. टिकाऊ और मुफ़्त टूल

अगर कोई समाज अपने नागरिकों को प्रोडक्शन के लिए ज़रूरी साधन नहीं देता, तो वह उनसे काम, ऑटोनॉमी और प्रोडक्टिविटी की मांग कैसे कर सकता है? यह थीम सामाजिक जीवन के ठोस आधार को छूती है: लेबर के साधनों तक पहुंच। खेती से लेकर कंस्ट्रक्शन तक, क्राफ़्ट से लेकर टेक्नोलॉजिकल इनोवेशन तक, सारा इंसानी प्रोडक्शन टूल पर निर्भर करता है। जब ये टूल कम, नाज़ुक, आर्थिक रूप से पहुंच से बाहर या कुछ ही लोगों के कंट्रोल में होते हैं, तो सामूहिक प्रोडक्शन की क्षमता बनावटी रूप से सीमित हो जाती है।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या प्लान की गई नाज़ुकता और सीमित पहुंच के बीच तालमेल में है। इसका कारण प्रोडक्शन सिस्टम हैं जो सामान की लंबी उम्र के बजाय खपत के तेज़ी से टर्नओवर को प्राथमिकता देते हैं, जिससे ज़रूरी चीज़ें कम उम्र वाली चीज़ों में बदल जाती हैं। पुराना होना एक टेक्निकल नतीजा नहीं रह जाता और एक सोची-समझी आर्थिक रणनीति बन जाती है। इसका नतीजा यह है कि लगातार रिप्लेसमेंट, खरीद और कर्ज़ की ज़रूरत बनी रहती है, जिससे चीज़ों में असमानता बढ़ती है, क्योंकि कम रिसोर्स वाले समुदायों को प्रोडक्शन, मेंटेनेंस और रोज़मर्रा की ज़िंदगी की आज़ादी के बुनियादी साधनों तक सही पहुँच नहीं मिल पाती।

आर्थिक आज़ादी को मज़बूत करने के बजाय, मौजूदा सिस्टम निर्भरता और बर्बादी को और बढ़ाता है। जो लोग इसकी कीमत चुकाते हैं, वे इनफॉर्मल वर्कर, छोटे प्रोड्यूसर, स्टूडेंट, कम इनकम वाले परिवार और आस-पास के समुदाय हैं जो काम, घर की मरम्मत, खेती, कंस्ट्रक्शन और इनकम जेनरेट करने के लिए ज़रूरी टूल हासिल या मेंटेन नहीं कर सकते। दर्द इस बात में

है कि अपने रहने के माहौल को बनाना, रिपेयर करना या बचाना नामुमकिन है। जब कोई परिवार छत की मरम्मत नहीं कर पाता, कोई छोटा किसान इक्विपमेंट की कमी के कारण अपनी फसल खो देता है, या किसी युवा के पास टेक्निकल लर्निंग टूल तक पहुँच नहीं होती, तो असमानता सीधे तौर पर दिखती है। इस मॉडल से फ़ायदा उठाने वाले इंडस्ट्रियल सेक्टर हैं जो तेज़ी से रिप्लेसमेंट साइकिल, डिस्पोजेबल कंजम्पशन चेन और ऐसे इकोनॉमिक ग्रुप से चलते हैं जो डिमांड के ज़बरदस्ती रिन्यूअल पर निर्भर रहते हैं। प्लान की गई कमज़ोरी इंसानी ज़रूरत को लगातार कंजम्पशन में बदल देती है और इकोनॉमिक निर्भरता को वैल्यू निकालने का एक परमानेंट तरीका बना देती है। यूनिवर्सल टूल्स की एक पब्लिक और कोऑपरेटिव इंडस्ट्री बनाने की बात कही जा रही है, जिसे टिकाऊपन, आसान मेंटेनेंस, मॉड्यूलरिटी के ऊंचे स्टैंडर्ड के साथ डिज़ाइन किया गया हो, और वर्कर्स, स्कूलों, कम्युनिटीज़ और छोटे प्रोड्यूसर्स के लिए फ्री या भारी सब्सिडी वाली एक्सेस हो। सबसे पहले, ज़रूरी टूल्स का एक नेशनल कैटलॉग बनाया जाना चाहिए, जिसमें खेती, सिविल कंस्ट्रक्शन, घर के मेंटेनेंस, टेक्निकल एजुकेशन, इलेक्ट्रॉनिक रिपेयर और कम्युनिटी प्रोडक्शन के लिए बेसिक इंस्ट्रूमेंट्स शामिल हों। इन सामानों को ओपन मैन्युफैक्चरिंग स्टैंडर्ड्स को फॉलो करना चाहिए, जिनमें इंटरचेंजेबल पार्ट्स हों और जिनकी लाइफ लंबी हो। इसके बाद, आस-पड़ोस, कोऑपरेटिव्स, टेक्निकल स्कूलों और लोकल एसोसिएशन्स में कम्युनिटी टूल लेंडिंग सेंटर्स बनाना ज़रूरी है। ये सेंटर्स प्रोडक्टिव लाइब्रेरीज़ की तरह काम करेंगे: नागरिक ज़रूरत पड़ने पर टूल एक्सेस कर सकेंगे, बिना परमानेंट पर्सनल एक्विजिशन का खर्च उठाए। इससे सोशल कॉस्ट कम होती है और कलेक्टिव ऑटोनॉमी बढ़ती है। रीजनल प्रोडक्शन नेटवर्क्स से जुड़ी लोकल मॉड्यूलर रिपेयर और मैन्युफैक्चरिंग वर्कशॉप्स को मज़बूत करना भी ज़रूरी है। प्रैक्टिकल तौर पर, इसमें पब्लिक वर्कशॉप्स, कम्युनिटी लैब्स, स्टैंडर्ड पार्ट्स की प्रिंटिंग, टेक्निकल मेंटेनेंस सेंटर्स और रिपेयर और असेंबली में वोकेशनल ट्रेनिंग प्रोग्राम्स शामिल हैं। इस प्रपोज़ल में टूल्स और कंपोनेंट्स के लिए ओपन-सोर्स डिज़ाइन भी शामिल हैं, जिससे पार्ट्स को रीजनल लेवल पर बनाया जा सके, जिसमें कोऑपरेटिव और छोटे लोकल इंडस्ट्रीज़ भी शामिल हैं। टूल एक डिस्पोजेबल कमोडिटी नहीं रह जाता और सोशल इंफ्रास्ट्रक्चर बन जाता है।

इसका विरोध उन इंडस्ट्रियल सेक्टर्स से होगा जो प्लान्ड ऑब्सोलेसेंस पर निर्भर हैं, उन मैन्युफैक्चरर्स से जिनका प्रॉफिट बार-बार रिप्लेसमेंट से जुड़ा है, और उन कमर्शियल चेन्स से होगा जो कंजम्पशन के परमानेंट साइकिल पर बनी हैं। यह विरोध रेगुलेटरी लॉबिंग, पेटेंट तक एक्सेस पर रोक, स्पेयर पार्ट्स की लिमिटेशन, रिपेयर के अधिकार में रुकावट, और किसी भी तरह के ओपन स्टैंडर्डाइजेशन के खिलाफ दबाव के ज़रिए दिखेगा। प्रोडक्ट की नाजुकता कोई टेक्निकल

कमी नहीं है, बल्कि लगातार मार्केट रिन्यूअल की एक सोची-समझी स्ट्रैटेजी है। यह इनोवेशन और लगातार रिप्लेसमेंट के बीच संबंध के ज़रिए नैरेटिव लेवल पर भी पैदा होता है। सिस्टम ड्यूरेबिलिटी को टेक्नोलॉजिकल पिछड़ेपन के तौर पर दिखाता है, जबकि असल में, तेजी से ऑब्सोलेसेंस असली मटेरियल प्रोग्रेस से ज़्यादा प्रॉफिटेबिलिटी मॉडल के काम आता है। इसलिए, थ्रोअवे कल्चर कंजम्पशन को फिर से बनाने का एक इकोनॉमिक टूल बन जाता है।

सबसे पहले, हमें रिपेयर, मेंटेनेंस और पार्ट्स, मैनुअल और टेक्निकल सपोर्ट तक पहुंच के यूनिवर्सल अधिकार की गारंटी देनी होगी। जब सोशल मेजोरिटी ज़रूरी टूल्स, इक्विपमेंट और सामान की यूज़फुल लाइफ बढ़ाने में कामयाब हो जाती है, तो आर्टिफिशियल रिप्लेसमेंट साइकिल पर डिपेंडेंस कम हो जाती है। धीरे-धीरे प्रोडक्टिव लॉजिक को बदलने के लिए मिनिमम ड्यूरेबिलिटी की ज़रूरत, कंपोनेंट्स का स्टैंडर्डाइज़ेशन, टेक्निकल स्पेसिफिकेशन्स का खुलापन, मॉड्यूलरिटी को बढ़ावा देना और प्लान्ड ऑब्सोलेसेंस की लिमिटेशन जैसे प्रोग्रेसिव रेगुलेटरी फ्रेमवर्क की ज़रूरत है। हर उपाय से परिवार की लागत कम करने, कम वेस्ट जेनरेशन और आबादी के लिए ज़्यादा मटेरियल ऑटोनॉमी में ठोस फायदे दिखाने की ज़रूरत है। फिर हमें सोशल मेजोरिटी को एक नॉर्मेटिव मेजोरिटी में बदलना होगा, जिसका मतलब रिपेयर के अधिकार पर कानून, कम्युनिटी वर्कशॉप के लिए पब्लिक फंड, मेंटेनेंस कोऑपरेटिव को बढ़ावा देना और ज़रूरी टूल्स के ओपन प्रोडक्शन के लिए इंसेंटिव हो। हमें ड्यूरेबिलिटी को लगातार डिस्पोज़ल की तुलना में समाज के लिए इकोनॉमिकली ज़्यादा फायदेमंद मानकर बचाव करना होगा।

ड्यूरेबल टूल्स नेचुरल रिसोर्स की बर्बादी कम करते हैं, परिवारों के लिए रेगुलर कॉस्ट कम करते हैं और लोकल प्रोडक्टिव कैपेसिटी बढ़ाते हैं। फ्री या शेयर्ड एक्सेस इकोनॉमिक ऑटोनॉमी, इनकम जेनरेशन और इंफ्रास्ट्रक्चर के कम्युनिटी मेंटेनेंस को मज़बूत करता है। एक मॉड्यूलर रिपेयर मॉडल, इंटीग्रेटेड ऑटोनॉमस कम्युनिटीज़ के बीच खास काम, टेक्निकल ट्रेनिंग और डिस्ट्रिब्यूटेड इनोवेशन के लिए नई जगहें बनाता है। जब टूल्स एक प्रिविलेज नहीं रह जाते और कलेक्टिव राइट बन जाते हैं, तो काम डिपेंडेंस नहीं रह जाता और क्रिएटिव पावर बन जाता है। कोई भी समाज तब तक मैटेरियल जस्टिस को बनाए नहीं रख सकता जब तक उसका प्रोडक्टिव बेस पूरी तरह से इस्तेमाल होने वाले सामानों के समय से पहले खत्म होने पर डिपेंड न हो। ड्यूरेबल और एक्सेसिबल टूल्स न सिर्फ इकोनॉमिक एफिशिएंसी दिखाते हैं बल्कि ज़िंदगी के साधनों पर रोज़ाना की सॉवरेनिटी भी दिखाते हैं। एक इंसाफ वाला समाज न सिर्फ इनकम को रीडिस्ट्रिब्यूट

करता है, बल्कि यह काम करने, बनाने, रिपेयर करने और अपना भविष्य बनाने की कैपेसिटी को भी रीडिस्ट्रिब्यूट करता है।

22. ट्रांसपोर्ट और सामान की आवाजाही

अगर सामान ज़रूरतमंदों तक समय पर न पहुँचे, तो ज़्यादा प्रोडक्शन करने का क्या फ़ायदा? यह ज़िंदगी के मटीरियल का आधार है, क्योंकि सारा प्रोडक्शन सर्कुलेशन पर निर्भर करता है। खाना, दवा, औज़ार, कपड़े और कच्चा माल तभी अपना सोशल काम पूरा करते हैं, जब वे दूरी को अच्छे से, सुरक्षित और अंदाज़े से पार कर सकें। बिना बांटे प्रोडक्शन करना, आखिर में, पैसे की बर्बादी है। आज की दुनिया में, सामान का ट्रांसपोर्टेशन इकॉनमी और रोज़मर्रा की ज़िंदगी में सबसे अहम गियर में से एक है। लॉजिस्टिक्स नेटवर्क की क्वालिटी कीमतों, प्रोडक्ट की उपलब्धता, मुश्किलों पर रिस्पॉन्स टाइम और कम्युनिटी के बीच इंटीग्रेशन पर असर डालती है। जब ट्रांसपोर्टेशन में कोई खराबी आती है, तो असर तुरंत होता है: बढ़ी हुई लागत, लोकल कमी, खराब होने वाले प्रोडक्शन का नुकसान, और सेंट्रल और आस-पास के इलाकों के बीच असमानता।

मौजूदा मॉडल की समस्या रूट का एक जगह होना, ट्रांसपोर्ट के कुछ ही तरीकों पर बहुत ज़्यादा निर्भरता, और इलाके के इंटीग्रेशन की कमी है। इसका कारण ऐसे लॉजिस्टिक्स सिस्टम हैं जो शॉर्ट-टर्म प्रॉफ़िट मैक्सिमाइज़ेशन के लिए प्लान किए गए हैं, न कि डिस्ट्रिब्यूटिव बैलेंस और सप्लाई की सोशल सिक्योरिटी के लिए। रेजिलिएंस, कैपिलैरिटी और इलाके की कंटिन्यूटी को प्रायोरिटी देने के बजाय, यह सिस्टम ज़्यादा प्रॉफिटेबल कॉरिडोर, बड़े शहरी सेंटर और ज़्यादा इकोनॉमिक डेंसिटी वाले इलाकों में फ्लो को कंसंट्रेट करता है। हमारे पास जो है वह है कुछ ट्रांसपोर्ट एक्सिस पर ओवरलोडिंग, कम प्रॉफिटेबल इलाकों को छोड़ना, और स्ट्रक्चरल बॉटलनेक में बढ़ोतरी। आखिरी असर यह होता है कि ऐसे इलाके बनते हैं जहाँ सामान सरप्लस होता है और दूसरे हमेशा के लिए कम होते हैं, तब भी जब कुल प्रोडक्शन सबके लिए काफी हो।

मौजूदा सिस्टम सोशल ज़रूरत के हिसाब से नहीं, बल्कि इकोनॉमिक सुविधा के हिसाब से बांटता है। जो लोग इसकी कीमत चुकाते हैं, वे दूर के समुदाय, ग्रामीण इलाके, शहरी बाहरी इलाके और ऐसी आबादी हैं जो खाने, दवाइयों, फ्यूल, स्कूल सप्लाई और प्रोडक्टिव इनपुट की लगातार सप्लाई पर डिपेंड करती हैं। जब एक प्रोडक्शन सेंटर में खाना होता है और दूसरे में भूख। जब स्टॉक में दवा होती है और रूट फेलियर की वजह से हॉस्पिटल केयर में देरी होती है। लॉजिस्टिक इनइक्वालिटी बहुतायत को लोकल कमी में बदल देती है। इस मॉडल से जो लोग

फायदा उठाते हैं, वे बड़े, कंसंट्रेटेड लॉजिस्टिक्स ऑपरेटर, स्ट्रेटेजिक रूट पर कंट्रोल रखने वाले बिचौलिए, और इकोनॉमिक ग्रुप होते हैं जिन्हें ट्रांसपोर्ट और डिस्ट्रीब्यूशन के सेंट्रलाइजेशन से फायदा होता है। कुछ एजेंटों के पास इंफ्रास्ट्रक्चर का जमावड़ा मार्केट पावर, प्राइस कंट्रोल और प्राइवेट हितों के हिसाब से प्राथमिकता तय करने की क्षमता को बढ़ावा देता है।

ज़रूरी सामानों के लिए एक इंटीग्रेटेड लॉजिस्टिक्स नेटवर्क बनाने की सलाह दी जाती है, जिसे रीजनल डिस्ट्रीब्यूशन सेंटर कई तरीकों से आपस में जोड़ेंगे: सड़क, रेल, जब लागू हो तो पानी का रास्ता, और लोकल कम दूरी के सिस्टम। इसे साफ चरणों में लागू किया जाना चाहिए। पहला चरण प्रोडक्शन और डिमांड फ्लो की एक नेशनल और इंटर-कम्युनिटी मैपिंग बनाना है, जिसमें पिछले चैप्टर के डिजिटल सिस्टम को खपत, मौसमी और क्षेत्रीय जोखिम के अनुमानों के साथ जोड़ा जाएगा। हर प्रोडक्शन क्षेत्र में रीजनल स्टोरेज और रीडिस्ट्रीब्यूशन हब होने चाहिए, जो यात्रा के समय और रुकावटों की संभावना को कम करने के लिए रणनीतिक रूप से तैनात हों। अगला कदम मॉडल डायवर्सिफिकेशन है। एक ही सिस्टम, खासकर सड़क ट्रांसपोर्ट पर बहुत ज़्यादा निर्भरता, स्ट्रक्चर को फ्यूल संकट, नाकाबंदी, मौसम की घटनाओं और इंफ्रास्ट्रक्चर के गिरने के प्रति कमज़ोर बनाती है। नेटवर्क में हाईवे, रेलवे, पानी के रास्ते और लोकल कम दूरी के डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम को शामिल किया जाना चाहिए, और ज़रूरी सामानों के लिए कॉरिडोर को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसलिए, हमें रियल-टाइम डिजिटल मॉनिटरिंग लागू करनी होगी, जिसमें इन्वेंट्री ट्रैकिंग, डिमांड फोरकास्टिंग, डायनामिक रूट ऑप्टिमाइज़ेशन, और खाना, दवाइयां और हॉस्पिटल सप्लाई जैसी ज़रूरी चीज़ों के लिए ऑटोमैटिक प्रायोरिटी तय करना शामिल हो। इकोनॉमिक एफिशिएंसी के अलावा, रूट मैनेजमेंट में डिस्ट्रिब्यूटिव क्राइटेरिया भी शामिल होना चाहिए। इसका मतलब है कि कम प्रॉफिटेबल, दूर-दराज के, या कम आबादी वाले समुदायों को सप्लाई से बाहर नहीं किया जा सकता। लगातार मिनिमम सप्लाई की एक इंस्टीट्यूशनल गारंटी होनी चाहिए, जिसे रीडिस्ट्रिब्यूटिव मैकेनिज्म से फाइनेंस किया जाए और जो पूरी तरह से मार्केट के उतार-चढ़ाव से सुरक्षित हो।

बड़े लॉजिस्टिक्स ऑपरेटर, डिस्ट्रीब्यूशन बिचौलिए, और रीजनल रूट पर मोनोपॉली वाले ग्रुप सामान के फ्लो के डीसेंट्रलाइज़ेशन और ट्रांसपेरेंसी का कड़ा विरोध करेंगे। वे रेगुलेटरी दबाव डालेंगे, एक्सक्लूसिव कॉन्ट्रैक्ट का बचाव करेंगे, इंफ्रास्ट्रक्चर को खोलने से रोकेंगे, और ज़्यादा डिस्ट्रिब्यूटेड मॉडल के ऑपरेशनल तौर पर मुमकिन न होने के बारे में बहस करेंगे। विरोध तब होगा, खासकर जब नया स्ट्रक्चर सट्टेबाजी के लिए मार्जिन को लिमिट करता है, डेडलाइन और

लागत पर पावर कम करता है, या कम प्रॉफिटेबल एरिया की सर्विस के लिए मजबूर करता है, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से सख्त मर्केंटाइल लॉजिक द्वारा नज़रअंदाज़ किया गया है। रूट और डिस्ट्रीब्यूशन सेंटर का कंट्रोल लॉजिस्टिकल एफिशिएंसी नहीं, बल्कि इकोनॉमिक पावर का एक स्ट्रेटेजिक कंसंट्रेशन दिखाता है। जो भी रूट, समय और मूवमेंट की प्रायोरिटी तय करता है, वह फाइनल कीमत, रीजनल अवेलेबिलिटी और सप्लाई की स्टेबिलिटी पर भी असर डालता है। रूट को बनाए रखना, ज़्यादा प्रॉफिटेबल मार्केट को सेलेक्टिव प्रायोरिटी देना, और आस-पास के इलाकों को रीजनल तौर पर बाहर रखना, मटीरियल इनइक्वालिटी के इनडायरेक्ट मैकेनिज्म बन जाते हैं।

सबसे पहले हमें ज़रूरी सामान, खासकर खाना, दवा, एनर्जी, प्रोडक्शन इनपुट और बेसिक ज़रूरतों के मेन फ्लो को मैप करना होगा और पब्लिक करना होगा। जब समाज के ज़्यादातर लोग और पब्लिक बॉडीज़ रुकावटों, रूट के जमाव और सिस्टमैटिक तरीके से कम सर्विस वाले इलाकों को देखना शुरू करते हैं, तो बड़े सुधारों के लिए एक ठोस आधार बनता है। इसके बाद, हमें रीजनल डिस्ट्रीब्यूशन सेंटर बनाने, कोऑपरेटिव रूट के लिए इंसेंटिव, इंटीग्रेटेड तरीकों को बढ़ाने और टेरिटोरियल कवरेज टारगेट वाले पब्लिक कॉन्ट्रैक्ट के साथ लॉजिस्टिक्स इंफ्रास्ट्रक्चर के धीरे-धीरे डीसेंट्रलाइज़ेशन को बढ़ावा देना चाहिए। इससे बिना किसी अचानक रुकावट के रीजनल मोनोपॉली कम होती है। हर नए स्ट्रक्चर को लागत में कमी, बेहतर सप्लाई और संकटों का सामना करने में ज़्यादा मज़बूती दिखानी होगी। लोगों का दबाव ऐसे रेगुलेटरी फ्रेमवर्क में बदलना चाहिए जो लॉजिस्टिकल ट्रांसपेरेंसी, कम मुनाफ़े वाले इलाकों को मिनिमम सर्विस की ज़िम्मेदारी, मोनोपॉलिस्टिक तरीकों की निगरानी और पब्लिक या कोऑपरेटिव ऑपरेटरों को मज़बूत करने की गारंटी दें। मुख्य स्ट्रैटेजी यह है कि सामान की आवाजाही को सिर्फ़ तुरंत होने वाले प्रॉफ़िट मार्जिन पर निर्भर रहने से रोका जाए।

कोई भी समाज तब तक डिस्ट्रिब्यूटिव जस्टिस को बनाए नहीं रख सकता जब तक सामान तक पहुँच रूट के प्राइवेट जमाव और आबादी के हिस्सों के टेरिटोरियल एक्सक्लूज़न पर निर्भर न हो। सामान को बराबरी से ट्रांसपोर्ट करना खुद सामाजिक एकता के लिए एक ज़रूरी शर्त है। यहीं पर प्रोडक्शन अपनी शुरुआत की जगह तक सीमित नहीं रहता और सोशल जस्टिस के हिसाब से सर्कुलेट होने लगता है। सच्चा डेवलपमेंट सिर्फ़ पैसा बनाने में नहीं है, बल्कि यह पक्का करने में है कि यह हर कम्युनिटी, हर परिवार और हर उस इलाके तक पहुँचे जिसे इसकी ज़रूरत है। प्रोडक्शन और ट्रांसपोर्टेशन के बीच इंटीग्रेशन से वेस्ट कम होता है, लॉजिस्टिक लॉस कम होता है और कंज्यूमर प्राइस स्टेबल होते हैं। पहले हाशिए पर पड़े कम्युनिटी एक प्रेडिक्टेबल सप्लाई

सिस्टम में इंटीग्रेट हो जाते हैं, जिससे इलाके की असमानता कम होती है। साथ ही, अलग-अलग तरीकों से क्लाइमेट क्राइसिस, सड़क की रुकावटों या इकोनॉमिक शॉक का सामना करने की ताकत बढ़ती है। ट्रांसपोर्टेशन सिर्फ़ एक सहायक सर्विस नहीं रह जाता और मटेरियल जस्टिस के लिए एक स्ट्रेटेजिक इंफ्रास्ट्रक्चर बन जाता है।

23. रीजेनरेटिव एक्सट्रैक्शन और स्ट्रेटेजिक रिसोर्स

हम जीवन के भौतिक आधार को कैसे बनाए रख सकते हैं, उन रिसोर्स के सोर्स को नष्ट किए बिना जो इसे संभव बनाते हैं? प्लांट और मिनरल एक्सट्रेक्शन का टॉपिक एक निर्णायक स्थान रखता है, क्योंकि यह प्रोडक्टिव ज़रूरतों और ग्रह की भविष्य की क्षमता के संरक्षण के बीच के संबंध से संबंधित है। हर समाज लकड़ी, फाइबर, मेटल, चट्टानों, पानी और स्ट्रेटेजिक मिनरल पर निर्भर करता है। हालांकि, जिस तरह से इन रिसोर्स को निकाला जाता है, उससे यह तय होता है कि डेवलपमेंट स्थायी होगा या खुद को नुकसान पहुंचाने वाला।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या इसके लीनियर एक्सट्रैक्शन लॉजिक में है। इसका कारण उन सिस्टम में है जो कम से कम समय में रिसोर्स के ज़्यादा से ज़्यादा एक्सट्रैक्शन पर केंद्रित हैं, जिसमें पर्यावरण का कोई या बहुत कम रीइंटीग्रेशन नहीं है, डिस्ट्रिब्यूटिव कंट्रोल कमजोर है, और लगभग कोई इंटरजेनरेशनल अकाउंटेबिलिटी नहीं है। मिट्टी, जंगल, पानी और मिनरल रिज़र्व को तुरंत इस्तेमाल के लिए उपलब्ध वैल्यू के अनंत स्टॉक के रूप में माना जाता है। हम जो देख रहे हैं, वह यह है कि मिट्टी, जंगल, पानी के सोर्स और मिनरल रिज़र्व लगातार खराब हो रहे हैं, जिससे भविष्य में कमी, इकोलॉजिकल कमजोरी और ग्लोबल स्ट्रेटेजिक रिसोर्स को कंट्रोल करने वाले कुछ एजेंटों के हाथों में आर्थिक जमावड़ा हो रहा है।

बिना भरपाई किए निकालने का मतलब है भविष्य को अभी खत्म करना। इसकी कीमत लोकल कम्युनिटी, गांव के लोग, आस-पास के इलाके और आने वाली पीढ़ियां चुका रही हैं। इसका नतीजा यह है कि मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कम हो रही है, पानी खराब हो रहा है, बायोडायवर्सिटी कम हो रही है, क्लाइमेट का खतरा बढ़ रहा है और उन इलाकों की आर्थिक कमजोरी बढ़ रही है जो सीधे नेचुरल रिसोर्स पर निर्भर हैं। जब जंगल को बिना भरपाई के हटा दिया जाता है, तो बारिश कम हो जाती है। जब पानी का सोर्स खराब होता है, तो कम्युनिटी बीमार पड़ जाती है। जब मिनरल रिज़र्व बिना प्लानिंग के खत्म हो जाता है, तो लोकल इकोनॉमी खत्म हो जाती है। इस मॉडल से जो लोग फायदा उठाते हैं, वे हैं बड़े निकालने वाले एजेंट, ऐसे इकोनॉमिक ग्रुप जो छूट पर ध्यान देते

हैं, कच्चे माल में इंटेंसिव इंडस्ट्रियल चेन और फाइनेंशियल एलीट जो नेचुरल रिसोर्स को तेजी से कैपिटल जमा करने में बदलते हैं। पैदा हुई दौलत अपने मूल इलाके में नहीं रहती, जिससे इलाके और सामाजिक गैर-बराबरी बढ़ती है। एक रीजेनरेटिव और अकाउंटेड एक्सट्रैक्शन मॉडल की सलाह दी जाती है, जिसमें सभी प्लांट या मिनरल एक्सट्रैक्शन के साथ एक रिप्लेसमेंट प्लान, टेरिटोरियल रिकवरी और परमानेंट पब्लिक ट्रैकिंग होनी चाहिए। पहले फेज़ में एनवायरनमेंटल रीजेनरेशन की असली कैपेसिटी के आधार पर सालाना एक्सट्रैक्शन कोटा बनाना शामिल है, जिसे इंडिपेंडेंट टेक्निकल स्टडीज़, क्लाइमेट मॉनिटरिंग और बायोम के लगातार इवैल्यूएशन से तय किया जाता है। एक्सट्रैक्शन मार्केट की डिमांड से चलना बंद कर देता है और इलाके की इकोलॉजिकल लिमिट्स को मानना शुरू कर देता है। फिर, हमें स्ट्रेटेजिक रिसोर्सेज़ की एक नेशनल डिजिटल रजिस्ट्री लागू करनी होगी। हर एक्सट्रैक्शन यूनिट को रियल टाइम में निकाले गए वॉल्यूम, प्रभावित एरिया, रिसोर्स की डेस्टिनेशन, पैदा हुए वेस्ट और रेस्टोरेशन शेड्यूल को रिकॉर्ड करना होगा। इसके बाद, हमें ज़रूरी इकोलॉजिकल रिकवरी फंड बनाने होंगे, जिन्हें सीधे एक्सट्रैक्शन एक्टिविटी से फाइनेंस किया जाएगा। एक्सप्लॉइटेशन से पैदा हुई वैल्यू का कुछ हिस्सा अपने आप इलाके में एनवायरनमेंटल रिकवरी, पानी को रोकने, मिट्टी को फिर से बनाने और कम्युनिटी रिहैबिलिटेशन के रूप में वापस आना चाहिए। पेड़-पौधों के मामले में, रेस्टोरेशन स्पीशीज़ और बायोम द्वारा टेक्निकल रीफॉरेस्टेशन के ज़रिए होना चाहिए, जिसमें लोकल इकोलॉजिकल खासियतों, जेनेटिक डायवर्सिटी और एनवायरनमेंटल फंक्शन्स का ध्यान रखा जाए। मिनरल्स के मामले में, इलाकों का पूरी तरह से ठीक करना ज़रूरी है, जिसमें कटाव कंट्रोल, पानी की सुरक्षा, जियोलॉजिकल स्टेबिलाइज़ेशन, और इंडस्ट्रियल वेस्ट का ज़्यादा से ज़्यादा दोबारा इस्तेमाल शामिल है।

बड़े एक्सट्रैक्टिंग एजेंट, कंसेशनरी ग्रुप, और बहुत ज़्यादा एक्सप्लॉइटेशन पर निर्भर इंडस्ट्रियल चेन, वॉल्यूम लिमिट, पूरी ट्रांसपेरेंसी, और रिसोर्स को फिर से भरने की ज़िम्मेदारी का विरोध करेंगे, खासकर तब जब इससे शॉर्ट-टर्म प्रॉफिट मार्जिन कम हो जाता है। यह विरोध रेगुलेटरी लॉबिंग, चुनिंदा लिटिगेशन, लाइसेंसिंग बॉडी पर दबाव, और इस बहस के ज़रिए पब्लिक डिबेट पर नैरेटिव कैप्चर के रूप में दिख सकता है कि एनवायरनमेंटल पाबंदियां ग्रोथ, एम्प्लॉयमेंट, और इकोनॉमिक सॉवरेनिटी को नामुमकिन बना देती हैं। प्राइवेट इंटरेस्ट द्वारा रेगुलेटरी कैप्चर इस बदलाव के मुख्य रिस्क में से एक है और इसका सामना पूरी तरह से ट्रांसपेरेंसी के साथ करने की ज़रूरत है। विरोध न केवल नॉर्म के खिलाफ होगा, बल्कि असरदार ओवरसाइट के खिलाफ भी होगा। सिस्टम धीरे-धीरे फ्लेक्सिबिलिटी, परमिसिव इंटरप्रिटेशन, और अकाउंटेबिलिटी के ग्रे

एरिया की तलाश करेगा, कानूनी कम्प्लायंस की आड़ में ज़्यादा से ज़्यादा एक्सप्लॉइटेशन की कैपेसिटी को बनाए रखेगा।

बदलाव की शुरुआत एक्सट्रैक्शन लिमिट, खराब एरिया की ज़रूरी रिकवरी, लगातार मॉनिटरिंग, और एनवायरनमेंटल और सोशल डैमेज के लिए फाइनेंशियल अकाउंटेबिलिटी पर सख्त और टेक्निकली सटीक कानून बनाने से होनी चाहिए। जब नियम जेनेरिक नहीं रहेंगे और उनके साफ मेट्रिक्स होने लगेंगे, तो रेगुलेटरी चोरी की गुंजाइश काफी कम हो जाएगी। फिर, हमें इंडिपेंडेंट और परमानेंट एनवायरनमेंटल ऑडिटिंग बनानी होगी, जिसकी निगरानी ऑटोनॉमस बॉडीज़ करें, डेटा टेक्नोलॉजी के ज़रिए इलाके की मॉनिटरिंग हो, एक्सट्रैक्शन इंडिकेटर्स को पब्लिक में बताया जाए, और नुकसान के हिसाब से सज़ा दी जाए, जो ऐसे मैकेनिज़्म के तौर पर काम करें जो सिस्टम पर प्राइवेट कब्ज़े को कमज़ोर करें। नियम न मानने पर लाइसेंस का ऑटोमैटिक सस्पेंशन एक ऑब्जेक्टिव उपाय के तौर पर काम करना चाहिए, न कि पॉलिटिकल या इकोनॉमिक उतार-चढ़ाव के अधीन।

लोगों का दबाव पब्लिक मॉनिटरिंग काउंसिल, प्रभावित समुदायों की इलाके में हिस्सेदारी, और असली असर के आधार पर रियायतों का समय-समय पर रिव्यू में बदलना चाहिए। इसका मकसद स्ट्रेटेजिक रिसोर्सेज़ को तुरंत मुनाफ़े के क्राइटेरिया के आधार पर मैनेज होने से रोकना है। लक्ष्य रिसोर्सेज़ के इस्तेमाल को रोकना नहीं है, बल्कि इसे इकोनॉमिक और इकोलॉजिकल जीवन की कंटिन्यूटी के अंडर लाना है। स्ट्रेटेजिक रिसोर्सेज़ सिर्फ़ आज के नहीं हैं, वे कलेक्टिव भविष्य के हैं। ज़िम्मेदारी से एक्सट्रैक्शन करने का मतलब है यह पहचानना कि असली दौलत सिर्फ़ उसमें नहीं है जो लिया जाता है, बल्कि उसमें भी है जो मौजूद रहने के लिए बचाकर रखा जाता है।

24. खाद्य उद्योग और इसकी सामाजिक भूमिका

यह कैसे संभव है कि दुनिया में इतने बड़े पैमाने पर भोजन का उत्पादन होता है, फिर भी लाखों लोग खाद्य असुरक्षा का सामना करते हैं? यह सवाल जीवन के भौतिक आधार के सबसे बड़े विरोधाभासों में से एक को उजागर करता है: उत्पादन की अधिकता का मतलब अपने आप सही पोषण नहीं होता। किसी समाज को भोजन उपलब्ध कराना न केवल उत्पादन पर निर्भर करता है, बल्कि प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग), संरक्षण, वितरण और सामूहिक अधिकार के रूप में भोजन तक वास्तविक पहुंच सुनिश्चित करने पर भी निर्भर करता है।

आज की दुनिया में, खाद्य उद्योग प्राथमिक उत्पादन और अंतिम उपभोग के बीच एक रणनीतिक स्थान रखता है। यह अनाज, मांस, सब्जियों, दूध और अन्य कच्चे माल को आसानी से उपलब्ध, लंबे समय तक चलने वाले और व्यापक रूप से वितरित किए जा सकने वाले उत्पादों में बदलता है। इसका दैनिक प्रभाव बहुत गहरा है: स्कूल के भोजन से लेकर शहरी आपूर्ति तक, अस्पताल के भोजन से लेकर घरेलू उपभोग तक, सब कुछ यह दिखाता है कि इस उद्योग की गुणवत्ता सीधे तौर पर सार्वजनिक स्वास्थ्य, जीवन-यापन की लागत, आर्थिक उत्पादकता और सामाजिक स्थिरता को प्रभावित करती है।

मौजूदा मॉडल की समस्या खाद्य उत्पादन और भोजन की सामाजिक भूमिका के बीच तालमेल की कमी में निहित है। इसका कारण ऐसे औद्योगिक ढांचे हैं जो मुनाफ़ा बढ़ाने, बाज़ार पर कब्ज़ा करने और ज़्यादा व्यावसायिक बिक्री वाले अल्ट्रा-प्रोसेस्ड उत्पादों को प्राथमिकता देने पर केंद्रित हैं। आबादी की पोषण संबंधी ज़रूरतों के आधार पर खाद्य श्रृंखला को व्यवस्थित करने के बजाय, यह प्रणाली मुनाफ़े, बाज़ार की सुविधा और वितरण की गति को प्राथमिकता देती है। हम बड़े पैमाने पर बर्बादी, भोजन तक पहुंच में असमानता और पोषण की जगह उपभोग के तर्क को हावी होते देखते हैं; नतीजतन, कुछ जगहों पर ज़रूरत से ज़्यादा आपूर्ति होती है तो कहीं कमी, और सार्वजनिक स्वास्थ्य के संकेतकों में गिरावट आती है। मौजूदा मॉडल में, उद्योग लोगों की तुलना में बाज़ार की ज़्यादा सेवा करता है। इस मॉडल में कम आय वाले परिवार, विकास के चरण में बच्चे, बुज़ुर्ग, हाशिए पर रहने वाले समुदाय और बड़े वितरण केंद्रों से दूर रहने वाले लोग कीमत चुकाते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि एक इलाके में भुखमरी होती है तो दूसरे में भारी बर्बादी; कम पोषण मूल्य वाले उत्पादों के कारण मोटापे के साथ-साथ कुपोषण भी होता है, और मात्रात्मक प्रचुरता के साथ-साथ गुणवत्तापूर्ण भोजन की कमी भी बनी रहती है। असमानता केवल आर्थिक नहीं रह जाती, बल्कि जैविक बन जाती है और लोगों के शरीर में बस जाती है। इस ढांचे से लाभ उठाने वाले बड़े खाद्य समूह, केंद्रित वितरण नेटवर्क और ऐसे क्षेत्र हैं जिनका मुनाफ़ा कम उत्पादन लागत और उच्च मुनाफ़ा मार्जिन वाले उत्पादों की भारी बिक्री पर निर्भर करता है। अल्ट्रा-प्रोसेस्ड खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता देने से भोजन अपनी मूल भूमिका से दूर हो जाता है और वित्तीय लेन-देन का एक साधन बन जाता है। पहला मुख्य पहलू है ज़रूरी प्रोसेसिंग, जिसमें इंडस्ट्रियल क्षमता का एक हिस्सा कानूनी और आर्थिक रूप से ऐसे बुनियादी खाद्य पदार्थों के उत्पादन की ओर लगाया जाना चाहिए जो पौष्टिक हों और सस्ते भी, जैसे अनाज, फोर्टिफाइड आटा, आसानी से मिलने वाले प्रोटीन, सेहतमंद डिब्बाबंद सामान, दूध, ज़रूरी डेयरी उत्पाद और बच्चों का खाना। इस तरह, इंडस्ट्री का काम सिर्फ़ कमर्शियल नहीं रह जाता, बल्कि यह खाद्य सुरक्षा के इंफ्रास्ट्रक्चर

का हिस्सा बन जाता है। दूसरा मुख्य पहलू है क्षेत्रीय वितरण रिज़र्व। हर इलाके में स्थायी रेगुलेटरी स्टॉक होने चाहिए, जो लॉजिस्टिक्स नेटवर्क और पिछले अध्यायों में बनाए गए इंटीग्रेटेड प्रोडक्शन सिस्टम से जुड़े हों। ये स्टॉक कमी, मौसम में बदलाव, सप्लाई संकट और ज़रूरी चीज़ों की अचानक बढ़ती कीमतों से निपटने के लिए एक बचाव तंत्र के तौर पर काम करते हैं। तीसरा मुख्य पहलू है सरप्लस (अतिरिक्त उत्पादन) का पूरा और समझदारी भरा इस्तेमाल। सुरक्षित सरप्लस, खाने लायक बाई-प्रोडक्ट्स और एक्सपायरी डेट के करीब पहुँच चुके सामान को पब्लिक और कम्युनिटी चैनलों के ज़रिए स्कूलों, अस्पतालों, सूप किचन्स, शेल्टर होम्स और सोशल प्रोग्राम्स तक पहुँचाया जाना चाहिए। इस तरह, जो चीज़ें बर्बाद हो सकती थीं, उन्हें बाँटने लायक भोजन में बदल दिया जाता है।

यह बदलाव चरणों में होना चाहिए। इसकी शुरुआत पौष्टिक चीज़ों के उत्पादन और ज़रूरी सामान की सप्लाई के लिए साफ़ टैक्स इंसेंटिव (छूट) देकर की जानी चाहिए, खासकर उन चीज़ों के लिए जिनका फ़ूड सिक्योरिटी पर सबसे ज़्यादा असर पड़ता है। इसके बाद, हमें बेहतर रेगुलेटरी और कॉन्ट्रैक्ट वाले तरीके लागू करने चाहिए, जैसे कि टाली जा सकने वाली बर्बादी के लिए जुर्माना, पक्की खरीद के लिए सरकारी कॉन्ट्रैक्ट, खाने लायक बचे हुए खाने के लिए दान के अनिवार्य लक्ष्य, और इन्वेंट्री पर नज़र रखने वाले पारदर्शी सिस्टम। हर कदम बर्बादी को आर्थिक रूप से कम फ़ायदेमंद बनाता है, जिससे भूख में असल कमी, उत्पादन का बेहतर इस्तेमाल और सप्लाई में ज़्यादा स्थिरता आती है। लोगों की मांग को फ़ूड सिक्योरिटी पर पक्के कानून, रणनीतिक स्टॉक की निगरानी करने वाली काउंसिल, और इंडस्ट्री, डिस्ट्रीब्यूशन और पब्लिक न्यूट्रिशन प्रोग्राम के बीच तालमेल में बदलना चाहिए। हमें खाने को सिर्फ़ एक कमर्शियल चीज़ मानने से रोकना होगा जो इंसानी ज़रूरत से अलग हो।

मकसद इंडस्ट्री को रोकना नहीं है, बल्कि उसे उसकी सबसे बुनियादी सामाजिक ज़िम्मेदारी के हिसाब से फिर से व्यवस्थित करना है: लोगों का पेट भरना, न कि सिर्फ़ बाज़ार चलाना। बड़े इंडस्ट्रियल ग्रुप, डिस्ट्रीब्यूशन नेटवर्क और लॉजिस्टिक्स बिचौलिए अनिवार्य रेगुलेटरी रिज़र्व, बर्बादी पर रोक और ज़रूरी सामान को प्राथमिकता देने का विरोध करेंगे, जब इससे उनके कम समय के मुनाफ़े पर असर पड़ेगा। यह विरोध रेगुलेटरी लॉबिंग, इन्वेंट्री पॉलिसी पर दबाव, डिस्पोज़ल के नियमों में ढील और तुरंत मुनाफ़े वाले कमर्शियल तरीकों के बचाव के रूप में सामने आएगा। खाने की भरपूर मात्रा और भूख का एक साथ होना उत्पादन की कमी की वजह से नहीं, बल्कि डिस्ट्रीब्यूशन और प्राथमिकता तय करने में जानबूझकर की गई नाकामी की वजह से है।

हम एक ऐसे समाज की चाहत रखते हैं जहाँ भूख होने पर भी खाने लायक खाना फेंका न जाए, और जहाँ इंडस्ट्री इंसानी गरिमा की सेवा करे। बिना पोषण की गारंटी के खाना पैदा करना नैतिक रूप से गलत है; इस ढांचे को फिर से व्यवस्थित करने का मतलब है सिस्टम को उसके सबसे नेक काम पर वापस लाना। पोषण पर आधारित उत्पादन से फ़ूड इनसिक्योरिटी कम होती है, ज़रूरी सामान की कीमतें स्थिर रहती हैं और पब्लिक हेल्थ के इंडिकेटर बेहतर होते हैं। क्षेत्रीय स्टॉक मैनेजमेंट से लॉजिस्टिक्स और मौसम से जुड़े संकटों का खतरा कम होता है, जबकि पूरी तरह इस्तेमाल करने से बर्बादी और उत्पादन के आधार पर दबाव कम होता है। कोई भी समाज खुद को तब तक विकसित नहीं मान सकता जब तक भरपूर खाना हर किसी की थाली तक न पहुँचे। जब फ़ूड इंडस्ट्री बाज़ार के तर्क के बजाय इंसानी गरिमा की सेवा करने लगती है, तो जीवन का भौतिक आधार आखिरकार अपना सबसे ज़रूरी काम पूरा करता है: सामूहिक भविष्य को बनाए रखना।

25. प्रकृति का सम्मान करने वाले कपड़े

कपड़े जैसी बुनियादी ज़रूरत प्रकृति के लिए सबसे नुकसानदेह गतिविधियों में से एक कैसे बन गई? कपड़े सिर्फ़ संस्कृति या सुंदरता दिखाने का ज़रिया नहीं हैं: ये सुरक्षा, सम्मान और काम की चीज़ भी हैं। आज, कपड़ा उद्योग बहुत बड़ी प्रोडक्शन चेन चलाता है, जिसमें प्राकृतिक रेशों की खेती से लेकर कृत्रिम मटीरियल बनाना, रंगना, बनाना और दुनिया भर में बांटना शामिल है। हर इंसान जीने, काम करने और समाज में घुलने-मिलने के लिए कपड़ों पर निर्भर है। यह उद्योग बहुत ज़्यादा पानी, ऊर्जा और कच्चे माल का इस्तेमाल करता है, और साथ ही तेज़ी से बदलने वाले और फेंकने लायक (डिस्पोज़ेबल) फैशन मॉडल के कारण बहुत ज़्यादा कपड़ा कचरा भी पैदा करता है।

आज के मॉडल की समस्या तेज़ी से बदलने और कम टिकाऊपन की सोच में है। यह बहुत छोटे फैशन साइकल, ऐसे कृत्रिम मटीरियल जो आसानी से नष्ट नहीं होते, और लगातार बदलाव पर आधारित बड़े पैमाने पर प्रोडक्शन से दिखता है। कपड़े, जिन्हें सुरक्षा, पहचान और सम्मान की इंसानी ज़रूरत पूरी करनी चाहिए, उन्हें तुरंत इस्तेमाल करने और जल्दी फेंकने वाली चीज़ में बदल दिया गया है। नतीजा यह होता है कि पूरी तरह इस्तेमाल लायक चीज़ें समय से पहले ही फेंक दी जाती हैं, प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता है और कपड़ा कचरा बहुत तेज़ी से बढ़ता है। हम पर्यावरण का नुकसान, पानी का प्रदूषण और सीमित संसाधनों का बहुत ज़्यादा इस्तेमाल

होते देखते हैं। कपड़े अब ज़रूरत पूरी करने के बजाय संस्कृति में पुरानी चीज़ों को छोड़ने की सोच को बढ़ावा देते हैं। इसकी कीमत वे समुदाय चुकाते हैं जो प्रोडक्शन चेन से होने वाले पर्यावरण के नुकसान से प्रभावित होते हैं: जैसे ज़्यादा पानी इस्तेमाल करने वाले इलाके, डाई और कृत्रिम माइक्रोफाइबर से प्रदूषण वाले क्षेत्र, और वे इलाके जो कपड़ा कचरा फेंकने की जगह बन गए हैं। कम आय वाले परिवारों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी में यह तकलीफ़ होती है; उन पर कम क्वालिटी वाले कपड़ों को बार-बार बदलने का दबाव होता है, जिससे एक बुनियादी ज़रूरत बार-बार होने वाले और असमान खर्च में बदल जाती है। इस मॉडल से फ़ायदा उठाने वाले बड़े फ़ास्ट-फ़ैशन चेन, बड़े पैमाने पर प्रोडक्शन करने वाली कपड़ा कंपनियाँ और ऐसे सेक्टर हैं जिनका मुनाफ़ा लगातार बदलाव और ट्रेंड्स को कृत्रिम रूप से नया करने पर निर्भर करता है। 'फेंकने की संस्कृति' (throwaway culture) लगातार आर्थिक फ़ायदा उठाने का एक ज़रिया बन जाती है।

ऐसे कपड़ा उद्योग को बनाने की वकालत की जाती है जो दोबारा बनने वाले (रीजेनरेटिव) रेशों, मॉड्यूलर प्रोडक्शन और अनिवार्य रूप से दोबारा इस्तेमाल करने के साइकल पर आधारित हो। पहले चरण में प्राकृतिक और दोबारा बनने वाले रेशों को प्राथमिकता दी जाती है, जैसे रीजेनरेटिव कॉटन, लिनन, टिकाऊ ऊन और स्थानीय हालात के हिसाब से बने क्षेत्रीय पौधों के रेशे। कपड़ा चेन को इलाके और प्रोडक्शन की पारिस्थितिक क्षमता से फिर से जोड़ने की ज़रूरत है। इसके बाद, हमें हर तरह के कपड़े के लिए टिकाऊपन के कम से कम मानक तय करने होंगे। ज़रूरी कपड़ों, जैसे पैंट, जैकेट, यूनिफ़ॉर्म, बच्चों के कपड़े और काम के कपड़ों को मज़बूती, सिलाई, मरम्मत की सुविधा और कम से कम चलने की अवधि जैसे ज़रूरी तकनीकी मानकों को पूरा करना होगा। तीसरे चरण में स्थानीय स्तर पर कपड़ा मरम्मत, कस्टमाइज़ेशन और रीसाइक्लिंग सेंटर बनाना शामिल है, जो कोऑपरेटिव, टेक्निकल स्कूलों और समुदायों से जुड़े होंगे। इससे कपड़े फेंकने वाली चीज़ के बजाय मरम्मत करने लायक चीज़ बन जाते हैं। कपड़ों को अपने-आप बदलने के बजाय, उन्हें लंबे समय तक इस्तेमाल के चक्र में घुमाया जाने लगता है। इस्तेमाल के बाद कपड़ों को इकट्ठा करने का एक सिस्टम प्रस्तावित है, जिसमें कपड़ों और फ़ैब्रिक को सॉर्टिंग, दोबारा इस्तेमाल, श्रेडिंग या औद्योगिक रूप से दोबारा इस्तेमाल के लिए वापस किया जाता है। कपड़ा मटीरियल प्रोडक्शन साइकल में वापस आ जाता है, जिससे कच्चे माल की निकासी और कचरे की मात्रा कम हो जाती है।

कम लागत और तेज़ी से बिक्री (हाई टर्नओवर) पर आधारित बड़ी फ़ास्ट फ़ैशन कंपनियाँ, टेक्सटाइल ग्रुप और इंडस्ट्रियल सेक्टर अक्सर टिकाऊपन, ट्रेसिबिलिटी (उत्पाद के सफ़र का पता

लगाने की क्षमता) और रिवर्स लॉजिस्टिक्स जैसे ज़रूरी नियमों का विरोध करते हैं, खासकर तब जब इससे उनका मुनाफ़ा कम हो और चीज़ों की खपत की रफ़्तार धीमी हो जाए। यह विरोध अक्सर नियमों को प्रभावित करने की कोशिश (लॉबिंग), कड़े सर्टिफ़िकेशन के ख़िलाफ़ दबाव और ऐसी बातों को फैलाने के ज़रिए सामने आता है जो सस्टेनेबिलिटी (टिकाऊपन) को कीमतों में बढ़ोतरी और कॉम्पिटिशन में पिछड़ने से जोड़ती हैं। कपड़ों का जल्दी बेकार हो जाना सिर्फ़ फ़ैशन या स्टाइल के ट्रेंड्स की वजह से नहीं होता, बल्कि यह एक ऐसे सिस्टम का नतीजा है जिसे जान-बूझकर लगातार नए कपड़े खरीदने, तेज़ी से फेंकने और बहुत ज़्यादा कचरा पैदा करने के लिए बनाया गया है। कपड़ा, डिज़ाइन, सिलाई और डिस्ट्रीब्यूशन – ये सभी चीज़ें सामान की उम्र या टिकाऊपन के बजाय तेज़ी से बिक्री (टर्नओवर) के लॉजिक पर काम करने लगती हैं। कपड़े शरीर का एक काम का और सांस्कृतिक हिस्सा न रहकर बार-बार खपत का ज़रिया बन जाते हैं।

इस बदलाव को आगे बढ़ाने के लिए टिकाऊ प्रोडक्शन, दोबारा इस्तेमाल हो सकने वाले मटीरियल और पर्यावरण पर कम असर डालने वाली टेक्सटाइल सप्लाई चेन के लिए साफ़ टैक्स इंसेंटिव (छूट) देने की ज़रूरत है। दूसरा चरण ऐसे नियमों के ज़रिए आना चाहिए जिनमें टेक्सटाइल का ऐसा कचरा जिसे रोका जा सकता है उस पर टैक्स, इस्तेमाल के बाद की ज़िम्मेदारी से जुड़े कानून, रिवर्स लॉजिस्टिक्स की ज़रूरतें, कपड़ों की कम से कम उम्र तय करना और पब्लिक सस्टेनेबिलिटी सर्टिफ़िकेशन शामिल हों। ये तरीके कचरे को फेंकने के सिस्टम को आर्थिक रूप से कम फ़ायदेमंद बनाते हैं, जिससे कचरा कम होता है, उत्पाद ज़्यादा समय तक चलते हैं और प्रोडक्शन व संरक्षण के बीच बेहतर संतुलन बनता है। लोगों के दबाव को पब्लिक सर्टिफ़िकेशन सिस्टम, मरम्मत और दोबारा इस्तेमाल करने वाली कोऑपरेटिव्स के लिए इंसेंटिव, लोकल प्रोडक्शन चेन को मज़बूत करने और सामाजिक-पर्यावरणीय मानकों की निगरानी में बदलना चाहिए। हमें यह रोकना होगा कि स्टाइल या सुंदरता के नाम पर चीज़ों को बर्बाद किया जाता रहे।

मकसद कपड़ों के स्टाइल या सांस्कृतिक विविधता को नकारना नहीं है, बल्कि उन्हें जल्दी बेकार हो जाने (ऑब्सोलेसेंस) के विनाशकारी लॉजिक से आज़ाद करना है। कपड़े फेंकने की चीज़ नहीं, बल्कि इंसानी ज़िंदगी और उन्हें बनाने वाले इलाके का एक ज़िम्मेदार विस्तार होने चाहिए। एक ऐसी इकॉनमी जिसमें ज़रूरी चीज़ें प्रकृति को नुकसान न पहुँचाएँ और जिसमें चीज़ों की अहमियत और धरती का संरक्षण साथ-साथ चलें। टिकाऊपन से संसाधनों की ज़्यादा खपत कम होती है, दोबारा इस्तेमाल से कचरा कम होता है और दोबारा पैदा हो सकने वाले प्राकृतिक रेशों से प्रोडक्शन करने पर पर्यावरण पर लंबे समय तक पड़ने वाला बुरा असर कम होता है। साथ ही,

मरम्मत और दोबारा इस्तेमाल की लोकल वर्कशॉप्स से कुशल लोगों के लिए रोज़गार पैदा होते हैं, कम्युनिटी की इकॉनमी मज़बूत होती है और अच्छे कपड़ों तक लोगों की पहुँच बढ़ती है। जब कपड़ों को एक सर्कुलर और सोच-समझकर बनाए गए सिस्टम का हिस्सा माना जाता है, तो सामूहिक भविष्य से समझौता किए बिना जीवन का भौतिक आधार मज़बूत होता है।

26. पेशों का असली महत्व

एक काम करते हुए समाज को क्या बनाए रखता है: कुछ खास पेशों की प्रतीकात्मक प्रतिष्ठा या खास काम की असली कीमत जो सामूहिक जीवन को बनाए रखती है? हर सामाजिक ढांचा तकनीकी ज्ञान, खास कौशल और ऐसे कामों पर निर्भर करता है जिनके लिए ट्रेनिंग, अनुभव और ज़िम्मेदारी की ज़रूरत होती है। इस कीमत को पहचानना सिर्फ़ रुतबे की बात नहीं है, बल्कि काम के लिहाज़ से न्याय और सभ्यता के बने रहने की बात है।

मौजूदा हालात में, खास पेशे सभी ज़रूरी क्षेत्रों में मौजूद हैं: स्वास्थ्य, इंजीनियरिंग, शिक्षा, लॉजिस्टिक्स, उत्पादन, टेक्नोलॉजी, ऊर्जा और सार्वजनिक प्रबंधन। ये पेशेवर बुनियादी ढांचा बनाते हैं, स्वास्थ्य का ध्यान रखते हैं, सिस्टम को व्यवस्थित करते हैं और इनोवेशन को बढ़ावा देते हैं। कुछ पेशों से जुड़ी प्रतिष्ठा शिक्षा से जुड़े फैसलों, प्रतिभा के बंटवारे और यहां तक कि जटिल चुनौतियों का सामना करने की समाज की क्षमता पर भी असर डालती है।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या सामाजिक महत्व और भौतिक या प्रतीकात्मक पहचान के बीच के अंतर में है। इसकी वजह सांस्कृतिक और आर्थिक ढांचे हैं जो कुछ पेशों को मुख्य रूप से आर्थिक लाभ, बाज़ार में प्रतिष्ठा या लोगों की नज़र में आने के आधार पर महत्व देते हैं, जबकि सामूहिक जीवन के लिए उतने ही ज़रूरी दूसरे काम कम वेतन वाले, नज़रअंदाज़ किए गए या सामाजिक रूप से कम आंके गए रह जाते हैं। हम ज़्यादा महत्व वाले क्षेत्रों में पेशेवरों के जमावड़े और अहम क्षेत्रों में लगातार कमी का सामना कर रहे हैं, जिससे सामाजिक व्यवस्था में काम के लिहाज़ से असंतुलन पैदा हो रहा है और ज़रूरी पेशों में योग्य कर्मचारियों की कमी हो रही है। इस मॉडल में, प्रतिष्ठा हमेशा असली महत्व से मेल नहीं खाती। पूरा समाज इसकी कीमत चुकाता है, लेकिन खासकर वे समूह जो सीधे ज़रूरी सेवाओं पर निर्भर हैं: स्वास्थ्य सेवा पेशेवरों की कमी का सामना कर रहे मरीज़, कमज़ोर शिक्षा व्यवस्था वाले छात्र, बुनियादी तकनीकी मदद के बिना समुदाय और ज़रूरी क्षेत्रों में कर्मचारियों की कमी से प्रभावित परिवार। परेशानी ज़रूरी पेशेवरों पर काम का बोझ, काम से जुड़ी बीमारियां, ब्रेन ड्रेन और सार्वजनिक और निजी सेवाओं की

गुणवत्ता में गिरावट के रूप में सामने आती है। आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र लाभ कमाते हैं जबकि प्रतिष्ठा को दृश्यता और पूंजी के इर्द-गिर्द केंद्रित करते हैं, जो असली सामूहिक प्रभाव से कटे होते हैं। बाज़ार, अपने आप में, लाभदायक कमी और राजस्व पैदा करने की क्षमता को पुरस्कृत करता है, न कि ज़रूरी तौर पर सामाजिक योगदान को। नतीजतन, रोज़मर्रा की ज़िंदगी को बनाए रखने वाले पेशे, जैसे शिक्षक, नर्स, रखरखाव तकनीशियन, सफाई कर्मचारी, देखभाल करने वाले, किसान, लॉजिस्टिक्स ऑपरेटर, उस पहचान से दूर रह जाते हैं जिसके वे हकदार हैं।

पेशों की तकनीकी और सामाजिक पहचान के लिए एक सार्वजनिक प्रणाली बनाने की वकालत की जाती है, जो तीन निष्पक्ष मानदंडों पर आधारित हो: सामूहिक प्रभाव, विशेषज्ञता का स्तर और परिचालन संबंधी ज़िम्मेदारी। पहला पैमाना है सामूहिक असर: स्वास्थ्य, शिक्षा, सुरक्षा, उत्पादन, बुनियादी ढांचे और सामाजिक भलाई पर उस पेशे का सीधा असर क्या है? दूसरा है विशेषज्ञता का स्तर, जिसमें तकनीकी ट्रेनिंग, सोचने-समझने की जटिलता और लगातार अपडेट रहने की ज़रूरत को ध्यान में रखा जाता है। तीसरा है काम से जुड़ी ज़िम्मेदारी, यानी उस काम से जुड़े इंसानी, तकनीकी या सिस्टम से जुड़े जोखिम का स्तर।

इसे लागू करने के पहले चरण में पेशेवर महत्व का एक राष्ट्रीय मैट्रिक्स तैयार करना शामिल है, जिसे तकनीकी परिषदों, विश्वविद्यालयों, संबंधित क्षेत्रों के प्रतिनिधियों और समुदायों द्वारा बनाया जाएगा। यह मैट्रिक्स वेतन नीतियों, ट्रेनिंग और वर्कफोर्स प्लानिंग का आधार बनेगा। इसके बाद, हमें ज़रूरी क्षेत्रों के लिए वेतन बढ़ाने की राष्ट्रीय योजनाएँ बनानी होंगी, जिसमें ऐतिहासिक रूप से कम आंके गए पेशों के लिए समय-समय पर बदलाव किए जाएँगे, खासकर उन पेशों के लिए जिनका सामाजिक असर तो ज़्यादा है लेकिन आर्थिक रूप से वे कम आकर्षक हैं। तीसरे चरण में पेशेवर उत्कृष्टता के लिए सार्वजनिक सर्टिफिकेशन और स्थायी, सामाजिक रूप से वित्तपोषित निरंतर शिक्षा कार्यक्रमों को लागू करना शामिल है, जो तकनीकी अपडेट, संस्थागत मान्यता और वास्तविक योग्यता के आधार पर तरक्की की गारंटी देंगे। अंत में, हमें संस्थागत अभियानों, सार्वजनिक पुरस्कारों और उच्च सामाजिक महत्व वाले पेशों (जिनमें ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहे पेशे भी शामिल हैं) की सांस्कृतिक छवि को बेहतर बनाने के ज़रिए प्रतीकात्मक मान्यता देने की सक्रिय नीति का प्रस्ताव रखना चाहिए।

यह उम्मीद की जा सकती है कि आर्थिक और सांस्कृतिक ताकत वाले लोग इस मॉडल का विरोध करेंगे। जो लोग प्रतीकात्मक प्रतिष्ठा, संस्थागत प्रभाव और ऐतिहासिक रूप से बहुत ज़्यादा वेतन पाने के आदी हैं, वे पहचान के बंटवारे और वेतन ढांचे में बदलाव का विरोध कर

सकते हैं। वे सुधार को कमज़ोर करने के लिए तकनीकी श्रेष्ठता, योग्यता-आधारित विशिष्टता और पेशेवर दर्जे के पारंपरिक पदानुक्रम की रक्षा जैसी बातें करेंगे, जिनका अक्सर सामूहिक जीवन पर पड़ने वाले वास्तविक असर से कोई लेना-देना नहीं होता। यह सिस्टम सामाजिक अस्तित्व को बनाए रखने वाली चीज़ों को नहीं, बल्कि पूंजी, दृश्यता और निर्णय लेने की शक्ति के केंद्रों के सबसे करीब वाली चीज़ों को ज़्यादा महत्व देता है। रोज़मर्रा की ज़िंदगी के लिए ज़रूरी पेशों को उन गतिविधियों की तुलना में कम प्रतीकात्मक और भौतिक पहचान मिलती है जिनका आम भलाई पर कम सीधा असर पड़ता है। सामाजिक मूल्य और पहचान के बीच का अंतर असमानता का एक ढांचागत कारण बन जाता है।

हमें सामाजिक प्रभाव के पारदर्शी पैमाने बनाने होंगे, जो सामूहिक जीवन को बनाए रखने के लिए हर काम की प्रणालीगत अहमियत को निष्पक्ष रूप से दिखा सकें। जब समाज का बड़ा हिस्सा यह समझ जाएगा कि कौन से पेशे समाज में एकजुटता, स्वास्थ्य, सुरक्षा और भौतिक निरंतरता को प्रभावी ढंग से बनाए रखते हैं, तो बदलाव का एक सही आधार बनेगा। तब, हमें मूल्यांकन नीतियों को प्रणालीगत कमियों और सामूहिक ज़रूरतों के ठोस सबूतों से जोड़ना होगा। ज़रूरी क्षेत्रों में वेतन की प्रगतिशील समीक्षा, अहम क्षेत्रों में प्रशिक्षण के लिए प्रोत्साहन, ऐतिहासिक रूप से अनदेखे पेशों को संस्थागत पहचान और रणनीतिक सार्वजनिक करियर का पुनर्गठन बाज़ार और सामाजिक महत्व के बीच ऐतिहासिक असंतुलन को ठीक करना शुरू करते हैं। जन-दबाव को पेशेवर मूल्यांकन के लिए नियामक ढांचे, उचित वेतन के लिए सार्वजनिक नीतियों और व्यवसायों के सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए समय-समय पर होने वाली प्रणालियों में बदलना होगा। हमें यह रोकना होगा कि प्रतिष्ठा को केवल मुनाफ़े के करीब होने से परिभाषित किया जाए। लक्ष्य सभी पेशों को एक जैसा बनाना नहीं है, बल्कि सामाजिक मूल्य और पहचान के बीच के अंतर को ठीक करना है। एक संतुलित समाज को न केवल उस चीज़ को महत्व देना चाहिए जो मुनाफ़ा पैदा करती है, बल्कि उस चीज़ को भी जो जीवन को बनाए रखती है।

प्रतिष्ठा, वेतन और सामाजिक महत्व को एक सीध में लाकर, सिस्टम प्रतिभा विकास और रणनीतिक क्षेत्रों में पेशेवरों के वितरण को बेहतर ढंग से निर्देशित करता है। इससे अहम क्षेत्रों में कमी कम होती है, दी जाने वाली सेवाओं की गुणवत्ता मज़बूत होती है और विशेष प्रशिक्षण के लिए प्रेरणा बढ़ती है। तकनीकी काम केवल बाज़ार की पहचान पर निर्भर नहीं रहता और इसे एक सामाजिक संपत्ति के रूप में महत्व दिया जाता है। एक परिपक्व समाज न केवल उस चीज़ को महत्व देता है जो दिखाई देती है, बल्कि उस चीज़ को भी जो उसके ठोस अस्तित्व को बनाए रखती

है। जब विशेष पेशों को उनके काम के अनुपात में पहचान मिलती है, तो जीवन सभी के लिए अधिक स्थिर, कुशल और न्यायपूर्ण हो जाता है।

भाग V — जीवन, संस्कृति और मानवता का भविष्य

27. सामुदायिक इंजीनियरिंग

हम इंसानों के लिए एक सम्मानजनक भविष्य की कल्पना कैसे कर सकते हैं, अगर रहने की सबसे बुनियादी जगह को जीवन के लिए एक ढांचे के बजाय सिर्फ़ एक सामान (कमोडिटी) माना जाता रहे? यह सवाल उस बिंदु को छूता है जहाँ भौतिक चीज़ें, साथ मिलकर रहना और भविष्य आपस में मिलते हैं। जिस तरह से हम घर और पड़ोस बनाते हैं, उससे न सिर्फ़ रहने की जगह तय होती है, बल्कि सेहत, सुरक्षा, सामाजिक जुड़ाव और जीवन की गुणवत्ता भी तय होती है।

आजकल, घरों का जो मॉडल सबसे ज़्यादा प्रचलित है, उसमें तुरंत आने वाली लागत, आर्थिक घनत्व और रियल एस्टेट की कीमत बढ़ने पर ज़्यादा ध्यान दिया जाता है, जिससे इंसानों की भलाई और समुदाय के आपस में जुड़ने पर बुरा असर पड़ता है। रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर इसका गहरा असर पड़ता है: हवादार न होने वाले घर, एक-दूसरे से कटे हुए पड़ोस, कॉमन एरिया की कमी और बुनियादी सुविधाओं की कमी से शारीरिक सेहत, मानसिक सेहत और सामाजिक मेलजोल पर बुरा असर पड़ता है। घर सांस्कृतिक, पारिवारिक और शहरी जीवन का आधार होता है।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या यह है कि इंजीनियरिंग, शहरी योजना और सामुदायिक जीवन के बीच कोई तालमेल नहीं है। इसकी वजह ऐसे प्रोजेक्ट हैं जो अलग-थलग होकर सोचे जाते हैं, जिनमें सिर्फ़ एक यूनिट पर ध्यान दिया जाता है, ज़मीन से ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की कोशिश की जाती है, और 'स्क्वायर मीटर' को सिर्फ़ पैसे की कीमत के तौर पर देखा जाता है। नतीजा यह होता है कि ऐसी शहरी जगहें बनती हैं जो आपस में ठीक से जुड़ी नहीं होतीं, जहाँ लोग सामाजिक रूप से अलग-थलग पड़ जाते हैं और जो पर्यावरण के लिहाज़ से भी ठीक नहीं होतीं। इससे सामाजिक रिश्ते कमज़ोर होते हैं, सार्वजनिक सुविधाओं की लागत बढ़ती है और जीवन की गुणवत्ता लगातार गिरती जाती है। घर तो बन जाता है, लेकिन वह इंसानी माहौल नहीं बन पाता जो

उसे बनाए रखे। नतीजा एक ऐसा नज़ारा होता है जहाँ लोग शारीरिक रूप से तो पास रहते हैं, लेकिन भावनात्मक रूप से दूर होते हैं। ऐसे पड़ोस जहाँ मेलजोल नहीं होता, ऐसे शहर जहाँ अपनापन महसूस नहीं होता, और ऐसे घर जो मौसम से तो बचाते हैं, लेकिन अकेलेपन से नहीं। हम सामाजिक अलगाव, शहरी असुरक्षा, मिलने-जुलने की जगहों की कमी और घर व समुदाय के बीच टूटे हुए रिश्ते से जूझ रहे हैं।

भविष्य के घर सिर्फ़ रहने की जगह नहीं, बल्कि सामूहिक भलाई का एक ढांचा होने चाहिए। एक ऐसे इंटीग्रेटेड कम्युनिटी इंजीनियरिंग मॉडल की वकालत की जाती है, जिसमें घरों को जीवित इंसानी इकोसिस्टम के तौर पर देखा जाए। व्यावहारिक तौर पर, हर हाउसिंग कॉम्प्लेक्स की योजना शुरू से ही मॉड्यूलर रिहायशी यूनिट के साथ बनाई जानी चाहिए, जो परिवार के आकार, जीवन के अलग-अलग पड़ावों और निवासियों की खास ज़रूरतों के हिसाब से खुद को ढाल सकें। फिर हमें ऐसी साझा जगहें बनानी चाहिए जिन्हें घर का ही एक स्वाभाविक विस्तार माना जाए: जैसे अंदरूनी चौक, कम्युनिटी किचन, पड़ोस की लाइब्रेरी, बच्चों के खेलने की जगहें, पढ़ाई की जगहें, कम्युनिटी गार्डन और अलग-अलग पीढ़ियों के लोगों के मिलने-जुलने की जगहें। इसके बाद, हमें स्मार्ट और सामूहिक इंफ्रास्ट्रक्चर की ज़रूरत है। हर यूनिट में वॉटर हार्वेस्टिंग और दोबारा इस्तेमाल करने के सिस्टम, लोकल एनर्जी जेनरेशन, टिकाऊ वेस्ट मैनेजमेंट, आसान आवा-जाही और पूरी डिजिटल कनेक्टिविटी होनी चाहिए। इसे साफ़-साफ़ चरणों में लागू किया जाना चाहिए। पहला चरण शहरी और हाउसिंग नियमों को फिर से बनाना है, जिसमें साथ रहने, टिकाऊपन और आसानी से पहुँचने के लिए कम से कम ज़रूरी बातें शामिल हों। दूसरा चरण रीजनल पायलट प्रोजेक्ट बनाना है, खासकर उन इलाकों में जहाँ शहर का विस्तार हो रहा है और खराब हो चुके इलाकों को फिर से बेहतर बनाया जा रहा है, ताकि उनकी आर्थिक और सामाजिक व्यवहार्यता दिखाई जा सके। तीसरा चरण इंजीनियरिंग कोऑपरेटिव, लोकल पब्लिक कंसोर्टियम और कम्युनिटी पार्टनरशिप के ज़रिए मॉड्यूलर तरीके से इसे दोहराना है।

मौजूदा सिस्टम बदलाव का कड़ा विरोध करता है। बड़े रियल एस्टेट हित, ज़मीन की सट्टेबाज़ी के मॉडल और हर प्लॉट से ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की सोच वाले सेक्टर, साझा जगहों, ग्रीन एरिया, सामूहिक सुविधाओं और कम्युनिटी इंफ्रास्ट्रक्चर के विस्तार का विरोध करेंगे, क्योंकि उन्हें लगता है कि इससे मुनाफ़ा तुरंत कम हो जाएगा। मास्टर प्लान पर दबाव होगा, शहरी प्लानिंग के नियमों में चुनिंदा लचीलापन होगा, और ऐसे घनी आबादी वाले मॉडल का बचाव किया जाएगा जो सिर्फ़ ज़मीन की आर्थिक कीमत बढ़ाने पर केंद्रित हों। शहरी जगह को रहने की जगह

के तौर पर नहीं, बल्कि मुनाफ़ा देने वाली संपत्ति के तौर पर देखा जाता है। घर को एक अलग चीज़ माना जाता है, न कि इंसानी इकोसिस्टम के हिस्से के तौर पर, जिसमें साथ रहना, सुरक्षा, आवा-जाही, देखभाल और अपनापन शामिल हो। इसलिए, सिस्टम का विरोध सिर्फ़ आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भी है, क्योंकि यह बिखरे हुए और भावनात्मक रूप से थका देने वाले शहरों को सामान्य मानता है।

इस प्रतिरोध को तीन परस्पर जुड़े तंत्रों के माध्यम से दूर किया जाना चाहिए: स्मार्ट शहरी विनियमन, प्रगतिशील कर प्रोत्साहन और संगठित सामाजिक दबाव। पहले कदम में शहरी परिषदों, बाध्यकारी सुनवाई और परियोजना निर्माण में परिवारों की क्षेत्रीय भागीदारी के माध्यम से समुदाय को स्थानीय निर्णय लेने की प्रक्रिया के केंद्र में रखना शामिल है। जब सामाजिक बहुमत उस स्थान के डिजाइन को प्रभावित करना शुरू कर देता है जहां वे रहते हैं, तो शहर एक थोपा हुआ उत्पाद नहीं रह जाता है और वास्तविक मानवीय जरूरतों को प्रतिबिंबित करना शुरू कर देता है। दूसरा कदम निर्माण मॉडल को बदलने के लिए ठोस प्रोत्साहन के माध्यम से होना चाहिए। नगर पालिकाएँ स्थायी सामुदायिक परियोजनाओं, मिश्रित भूमि उपयोग, सामान्य क्षेत्रों के साथ एकीकृत आवास, शहरी उद्यान, रहने की जगह और पारिस्थितिक ऊर्जा और जल समाधान के लिए कर लाभ स्थापित कर सकती हैं। साथ ही, नए शहरी नियोजन मापदंडों में सह-अस्तित्व, पहुंच, पर्यावरणीय दक्षता और सामुदायिक एकीकरण के न्यूनतम तत्वों को अनिवार्य बनाना चाहिए। एक चौराहा, एक सामुदायिक केंद्र, लोगों के लिए डिज़ाइन की गई एक सड़क अगले पैमाने के लिए संचयी मिसाल हैं। हालाँकि, सबसे महत्वपूर्ण बात सांस्कृतिक बदलाव है: समाज को फिर से मानवीय शहरों की चाहत पैदा करना। शहरी परिवर्तन तभी अपरिवर्तनीय हो जाता है जब बहुमत शत्रुतापूर्ण शहर के तर्क को खारिज कर देता है और संरचनात्मक अधिकारों के रूप में अपनेपन, निकटता और जीवन की गुणवत्ता की मांग करना शुरू कर देता है। इस प्रकार आवास डिजाइन केवल वास्तुशिल्प नहीं रह जाता है और सामाजिक, पर्यावरणीय और कार्यात्मक बन जाता है।

यहीं पर भविष्य दिखाई देता है। सिर्फ बड़े शहर ही नहीं, बल्कि बेहतर शहर भी। सिर्फ घर ही नहीं, बल्कि समुदाय भी। न केवल संरचनाएं, बल्कि अधिक सम्मानजनक, सुरक्षित और खुशहाल जीवन। नई दुनिया की शुरुआत होती है जहां लोगों को एक बार फिर महसूस होता है कि वे वहीं के रहने वाले हैं जहां वे रहते हैं। सामुदायिक तर्क के साथ नियोजित आवास सामाजिक बंधनों को मजबूत करता है, शहरी अलगाव को कम करता है और सुरक्षा और कल्याण में सुधार

करता है। साझा बुनियादी ढांचा रखरखाव लागत को कम करता है, प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलन करता है और ऊर्जा दक्षता बढ़ाता है। मॉड्यूलैरिटी आवास को पारिवारिक जीवन के विभिन्न चरणों और स्थानीय जरूरतों के अनुकूल बनाने की अनुमति देती है, जिससे शहर अधिक जीवंत और लचीला बन जाता है। इस चरण की आशा इस समझ से उत्पन्न होती है कि निवास स्थान पर कब्जा करने से कहीं अधिक है। यह अपनेपन, संस्कृति और भविष्य के निर्माण के बारे में है। जब इंजीनियरिंग को सामुदायिक जीवन द्वारा निर्देशित किया जाता है, तो आवास केवल आश्रय नहीं रह जाता है और अधिक मानवीय, टिकाऊ और एकीकृत सभ्यता की नींव बन जाता है।

28. सामुदायिक देखभाल

यदि अस्तित्व के लिए सबसे आवश्यक भलाई को बीमारी पर देर से की गई प्रतिक्रिया के रूप में माना जाता रहेगा, न कि सामूहिक जीवन की स्थायी नींव के रूप में, तो हम वास्तव में गरिमापूर्ण मानव भविष्य की कल्पना कैसे कर सकते हैं? जिस तरह से एक समाज देखभाल का आयोजन करता है वह न केवल जीवन प्रत्याशा को परिभाषित करता है बल्कि प्रत्येक दिन की गुणवत्ता को भी परिभाषित करता है।

वर्तमान स्वास्थ्य मॉडल समस्या बिगड़ने के बाद हस्तक्षेप पर अपने प्रयासों को केंद्रित करता है, रोकथाम, मानसिक स्वास्थ्य और समुदायों की निरंतर निगरानी के लिए अस्पताल संरचनाओं, आपातकालीन उपचार और उच्च विशेषज्ञता को प्राथमिकता देता है। इसके प्रभावों में कतारें, पहुंच में देरी, पेशेवर अधिभार, क्षेत्रीय असमानता और तनाव, खराब पोषण, सामाजिक अलगाव और अनिश्चित आवास और कामकाजी परिस्थितियों के कारण होने वाली मूक बीमारी शामिल हैं। स्वास्थ्य वह आधार है जिस पर शिक्षा, कार्य, सह-अस्तित्व और भविष्य की आशा टिकी हुई है।

वर्तमान मॉडल की समस्या रोकथाम, उपचार और सामुदायिक जीवन के बीच विखंडन में है। इसका कारण अलग-अलग विशिष्टताओं, असमान पहुंच और प्रतिक्रियाशील तर्क द्वारा आयोजित एक प्रणाली है, परिणाम बीमारियों का पूर्वानुमान लगाने, कमजोर समूहों की निगरानी करने और शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वास्थ्य को एकीकृत करने में कठिनाई है। अंत में, हमारे सामने सेवाओं की अधिकता, रोकी जा सकने वाली स्थितियों का बिगड़ना और जीवन की गुणवत्ता में गिरावट है। बीमारी का इलाज तो हो जाता है, लेकिन जिस जीवन से यह बीमारी पैदा होती है, उसकी हमेशा देखभाल नहीं की जाती।

एक व्यापक सामुदायिक स्वास्थ्य मॉडल की वकालत की जाती है, जो रोकथाम के स्थानीय नेटवर्क, निरंतर निगरानी और चिकित्सा, मानसिक स्वास्थ्य, पोषण, शारीरिक गतिविधि और पर्यावरणीय स्थितियों के बीच एकीकरण पर आधारित है। व्यावहारिक रूप से, प्रत्येक पड़ोस, समुदाय या शहरी केंद्र में एकीकृत देखभाल केंद्र होने चाहिए, जो क्षेत्रीय अस्पतालों, स्कूलों, खेल सुविधाओं और सामाजिक सहायता नेटवर्क से जुड़े हों। इन केंद्रों को नियमित निवारक देखभाल, पारिवारिक अनुवर्ती, मनोवैज्ञानिक सहायता, पोषण संबंधी मार्गदर्शन, शारीरिक गतिविधि कार्यक्रम और पर्यावरणीय कारकों की निगरानी की पेशकश करनी चाहिए जो सीधे भलाई को प्रभावित करते हैं।

इसे लागू करने का पहला चरण है प्राइमरी केयर और प्रिवेंटिव मेडिसिन (बीमारी से बचाव वाली चिकित्सा) का विस्तार करना, जिसमें अलग-अलग क्षेत्रों में काम करने वाली मल्टी-डिसिप्लिनरी टीमें हों: डॉक्टर, नर्स, मनोवैज्ञानिक, न्यूट्रिशनिस्ट, सोशल वर्कर और कम्युनिटी एजेंट। दूसरा चरण है हेल्थ रिकॉर्ड्स का डिजिटल इंटीग्रेशन, जिससे लगातार और पर्सनलाइज़्ड मॉनिटरिंग हो सके, और साथ ही डेटा की सुरक्षा और इंसानी देखरेख भी बनी रहे। तीसरे चरण में लोगों की भलाई के लिए स्थायी पब्लिक प्रोग्राम बनाना शामिल है, जैसे बीमारी से बचाव के कैंपेन, हेल्दी खान-पान, सुस्त जीवनशैली से निपटना, इमोशनल हेल्थ को सपोर्ट करना और बुजुर्गों व बच्चों की देखभाल करना। कम्युनिटी-बेस्ड सोच पर आधारित हेल्थकेयर सिस्टम से अस्पताल में भर्ती होने की नौबत कम आती है, बीमारी से बचाव बेहतर होता है, स्ट्रक्चरल लागत कम होती है और प्रोफेशनल्स व आम लोगों के बीच संबंध मजबूत होते हैं। शरीर, मन और पर्यावरण को एक साथ लाकर, यह सिस्टम सिर्फ़ संकट का सामना करने से आगे बढ़कर जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाने की दिशा में काम करता है।

यह साफ़ है कि मौजूदा मॉडल इस बदलाव का विरोध करता है। बहुत ज़्यादा ब्यूरोक्रेटिक स्ट्रक्चर, सिर्फ़ इलाज पर केंद्रित आर्थिक हित और बिखरे हुए मैनेजमेंट मॉडल, बीमारी से बचाव और लगातार देखभाल पर केंद्रित सिस्टम की ओर बढ़ने में बाधा डाल सकते हैं। यह विरोध संस्थागत बंटवारे, प्रशासनिक बोझ, देर से प्रतिक्रिया देने में संसाधनों के केंद्रित होने और ऐसे फाइनेंशियल मॉडल को बनाए रखने के कारण होता है जो बीमारी से बचाव के बजाय बीमारी के स्थापित होने से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाते हैं। हेल्थ सिस्टम संकट के इर्द-गिर्द काम करता है: यह देखभाल तब देता है जब संकट पहले ही आ चुका होता है, बीमारी बढ़ चुकी होती है और तकलीफ़ एक बड़ी सामाजिक लागत बन चुकी होती है। प्राइमरी केयर, मेंटल हेल्थ, फ़ैमिली केयर, बीमारी

से बचाव और क्षेत्रीय फ़ॉलो-अप के बीच बिखराव देर से प्रतिक्रिया देने की सोच को बढ़ावा देता है, जिससे गरिमा और दक्षता प्रभावित होती है।

इस विरोध को लगातार पब्लिक इन्वेस्टमेंट, इंटीग्रेटेड काम के लिए प्रोफेशनल्स की ट्रेनिंग और स्थानीय देखभाल की प्राथमिकताओं को तय करने में कम्युनिटी की भागीदारी के ज़रिए दूर किया जाना चाहिए। पहला कदम सिस्टम के क्षेत्रीय आधार को मजबूत करना है, जिसमें मल्टी-डिसिप्लिनरी टीमें, स्थायी स्थानीय उपस्थिति और लोगों की प्रिवेंटिव मॉनिटरिंग के तरीके शामिल हों। जब देखभाल रोज़मर्रा की ज़िंदगी के करीब होती है, तो सिर्फ़ इमरजेंसी केयर पर निर्भरता कम हो जाती है। दूसरा चरण बीमारी से बचाव, इलाज और सोशल फ़ॉलो-अप के धीरे-धीरे इंटीग्रेशन के ज़रिए होना चाहिए। बीमारी से बचाव के हेल्थ प्रोग्राम, कम्युनिटी मॉनिटरिंग, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के बीच इंटीग्रेशन, भलाई के बारे में शिक्षा, और स्कूलों व कम्युनिटी स्पेस के साथ तालमेल ऐसे कदम हैं जो सिस्टम को प्रतिक्रिया देने की सोच से हटाकर पहले से तैयारी करने की सोच की ओर ले जाते हैं। हर उपाय से बीमारियों के बिगड़ने में कमी, जीवन की गुणवत्ता में सुधार और प्रोफेशनल व कम्युनिटी के बीच संबंध मजबूत होने का प्रमाण मिलना चाहिए। हालांकि, सबसे अहम बात है लोगों की भागीदारी। जब समुदाय स्थानीय स्तर पर देखभाल की प्राथमिकताओं को तय करने में मदद करता है, तो सिस्टम सिर्फ़ प्रशासनिक नहीं रह जाता, बल्कि मानवीय बन जाता है और उस इलाके की असलियतों के प्रति संवेदनशील हो जाता है। हमारी उम्मीद इस समझ से आती है कि सेहत का मतलब सिर्फ़ बीमारी का न होना नहीं है। यह संतुलन, देखभाल, बचाव और सम्मान का होना है। जब समाज हालात बिगड़ने से पहले ही जीवन की परवाह करने लगता है, तो भविष्य सिर्फ़ ज़िंदा रहने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि मानवीय संतुष्टि का ज़रिया बन जाता है।

29. प्रकृति का सम्मान करते हुए पर्यटन

हम दुनिया को कैसे देख सकते हैं, बिना उसे बर्बाद किए जो उसे देखने लायक बनाता है? यह सवाल इंसानों के एक ज़्यादा जागरूक भविष्य को बनाने में अहम भूमिका निभाता है, क्योंकि यात्रा का मतलब नज़ारों को खत्म करना नहीं, बल्कि उनके साथ मिल-जुलकर रहना सीखना होना चाहिए। विस्थापन, संस्कृति और पर्यावरण के बीच के रिश्ते को फिर से समझने की ज़रूरत है ताकि खोज का इंसानी अनुभव पर्यावरण के नुकसान में न बदल जाए।

आजकल, पर्यटन से स्थानीय अर्थव्यवस्थाएँ चलती हैं, नौकरियाँ पैदा होती हैं, और लोगों और इलाकों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ता है। इसका रोज़ का असर मेज़बान समुदायों और यात्रियों, दोनों पर पड़ता है, जिससे आय, बुनियादी ढाँचे और दुनिया को देखने के नज़रिए पर प्रभाव पड़ता है। हालाँकि, जब पर्यटन की योजना ठीक से नहीं बनाई जाती, तो इससे भीड़-भाड़, संस्कृति में विकृति, बहुत ज़्यादा कचरा पैदा होना और नाजुक इकोसिस्टम पर दबाव जैसी समस्याएँ होती हैं।

मौजूदा मॉडल की समस्या मास टूरिज़्म (बड़े पैमाने पर पर्यटन) और प्राकृतिक जगहों के बेरहमी से दोहन की सोच में है। इसकी वजह है लोगों का एक ही जगह पर बहुत ज़्यादा जमावड़ा, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा, और पर्यावरण के इस्तेमाल की कोई साफ़ सीमा न होना; और इन सबको और भी खराब करते हैं ऐसे बिज़नेस मॉडल जो सिर्फ़ ज़्यादा संख्या और तुरंत मुनाफ़े पर ध्यान देते हैं। हम देखते हैं कि पगडंडियों, नदियों, समुद्र तटों, जंगलों और संरक्षित इलाकों का नुकसान हो रहा है, जिससे उस प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत का धीरे-धीरे नाश हो रहा है जो खुद पर्यटन गतिविधि को बनाए रखती है। प्रकृति को महत्व देने के बजाय, मौजूदा मॉडल उसे खत्म कर रहा है। बेमिसाल खूबसूरती वाली जगहें अपनी ही सफलता की शिकार बन जाती हैं: कचरे से भरे समुद्र तट, खराब हो चुकी पगडंडियाँ, दूषित झरने, विस्थापित जीव-जंतु, और अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे और बढ़ती जीवन-लागत के दबाव में जी रहे स्थानीय समुदाय। जो चीज़ इंसानों को प्राकृतिक दुनिया के करीब लानी चाहिए, वही उसके बिगड़ने की रफ़्तार को बढ़ा देती है।

पर्यटन का भविष्य इंसानी मौजूदगी और संरक्षण के बीच तालमेल का भविष्य हो सकता है। ऐसे पर्यटन सिस्टम और कम असर वाले अभियानों की वकालत की जाती है जो पर्यावरण की क्षमता, नियंत्रित रास्तों और स्थानीय स्तर पर अनिवार्य रूप से दोबारा निवेश करने पर आधारित हों। पहला पहलू है हर इलाके के लिए इस्तेमाल की अधिकतम क्षमता। हर प्राकृतिक इलाके में रोज़ाना आने वाले पर्यटकों की अधिकतम संख्या तय होनी चाहिए, जो इकोलॉजिकल सपोर्ट, बायोम की संवेदनशीलता, मौसम और नुकसान के जोखिम के तकनीकी अध्ययन पर आधारित हो। दूसरा पहलू है समझदारी से पहुँच का प्रबंधन, जिसमें पहले से डिजिटल बुकिंग, रियल-टाइम मॉनिटरिंग और पगडंडियों, समुद्र तटों, नदियों और संरक्षण क्षेत्रों में लोगों की आवाजाही पर नियंत्रण शामिल हो। इससे समय के साथ पर्यटकों का आना बँट जाता है, भीड़-भाड़ से बचा जा सकता है और संवेदनशील इलाकों की सुरक्षा होती है। तीसरा पहलू है तय रास्तों और गाइडेड अनुभवों का ढाँचा तैयार करना, जिसमें निशान लगे रास्ते, देखने के लिए नियंत्रित क्षेत्र और सर्टिफाइड कम्युनिटी

गाइड के साथ अभियान शामिल हों। यहाँ, पर्यटन किसी घुसपैठ की तरह नहीं, बल्कि एक शैक्षिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय अनुभव बन जाता है।

इसे साफ़-साफ़ चरणों में लागू किया जाना चाहिए। पहला चरण है इलाकों की पर्यावरणीय और सांस्कृतिक मैपिंग करना, जिसमें इस्तेमाल की सीमाएँ, नाजुक इलाके और पर्यटन के लिए सही ज़ोन की पहचान की जाए। दूसरा चरण है शेड्यूल बनाने और पहुँच को नियंत्रित करने के लिए पब्लिक और कम्युनिटी-बेस्ड प्लेटफ़ॉर्म बनाना। तीसरा चरण है गाइड, पर्यावरण शिक्षकों और इलाके के रखवालों का लोकल नेटवर्क बनाना, जिसमें वहाँ के रहने वाले लोग, पारंपरिक समुदाय और संरक्षण विशेषज्ञ शामिल हों। इस प्रस्ताव का एक ज़रूरी हिस्सा है लोकल स्तर पर अनिवार्य रूप से दोबारा निवेश करना। पर्यटन से होने वाली कमाई का एक हिस्सा नियमों के तहत पर्यावरण संरक्षण, लोकल साफ़-सफ़ाई, ट्रेल्स के रखरखाव, पर्यावरणीय शिक्षा और इलाके की रक्षा करने वाले समुदायों को उचित मुआवज़ा देने के लिए तय किया जाना चाहिए। यह बहुत ज़रूरी है क्योंकि जो लोग प्रकृति की रक्षा करते हैं, उन्हें उससे होने वाली कमाई में भी उचित हिस्सा मिलना चाहिए।

बड़े टूर ऑपरेटर, बीच के प्लेटफॉर्म और बड़े पैमाने पर टूरिज़्म चलाने वाले सेक्टर, विज़िटर की संख्या पर रोक, संवेदनशील इलाकों की सुरक्षा और संरक्षण में ज़रूरी दोबारा निवेश का विरोध कर सकते हैं। वे नियमों में ढील, लाइसेंस आसान करने, पर्यावरण की क्षमता से ज़्यादा लोगों के आने को बढ़ावा देने और डेस्टिनेशन के ज़्यादा से ज़्यादा दोहन वाले मॉडल का समर्थन करने का दबाव डालेंगे। इलाका अब एक जीवित इकोसिस्टम नहीं रह गया है, बल्कि इसे तेज़ी से इस्तेमाल होने वाले प्रोडक्ट की तरह देखा जाता है। नज़ारे, स्थानीय समुदाय और प्राकृतिक विरासत को आर्थिक मुनाफ़े के नज़रिए से देखा जाता है, बिना इसके कि उनके संरक्षण के लिए कोई उचित फ़ायदा मिले। प्रकृति को सिर्फ़ एक बैकग्राउंड बना दिया जाता है, न कि एक ऐसी जीवित संरचना जो इंसानी अनुभव को बनाए रखती है।

इस विरोध को मज़बूत पर्यावरण नियमों, रीजेनरेटिव टूरिज़्म के लिए पब्लिक सर्टिफ़िकेशन और जागरूक ग्राहकों के बढ़ते दबाव से दूर किया जाना चाहिए, जो नैतिक और टिकाऊ अनुभव चाहते हैं। पहला कदम प्राकृतिक इलाकों, ट्रेल्स, पार्कों और पर्यावरण के लिहाज़ से बहुत संवेदनशील जगहों के लिए 'कैरीइंग कैपेसिटी' (वहाँ कितने लोग आ सकते हैं) की साफ़ सीमाएँ तय करना है। जब लोगों का आना-जाना इलाके की असल क्षमता के हिसाब से तय होता है, तो लगातार होने वाली टूट-फूट कम होती है और अनुभव की क्वालिटी बेहतर होती है। दूसरा कदम

ज़रूरी दोबारा निवेश और स्थानीय भागीदारी के ज़रिए उठाया जाना चाहिए। संरक्षण से जुड़े पर्यावरण टैक्स, कम्युनिटी फ़ंड, टिकाऊ ऑपरेटरों के लिए पब्लिक सर्टिफ़िकेशन और समय-समय पर असर का ऑडिट - ये ऐसे काम हैं जो टूरिज़्म को आर्थिक रूप से संरक्षण के साथ जोड़ते हैं। हर नए तरीके को यह दिखाना होगा कि इलाके की सुरक्षा लंबे समय में उसकी निरंतरता और आकर्षण को मज़बूत करती है। इसके बाद, यात्रा के बारे में सोच-समझ में सांस्कृतिक बदलाव लाना ज़रूरी हो जाता है। सामाजिक दबाव और ग्राहकों की शिक्षा से माँग में बदलाव आना चाहिए: कम कंज्यूमर टूरिज़्म, ज़्यादा चिंतन, सीखने और सम्मान वाला टूरिज़्म। जब ज़्यादातर लोग जगहों पर सिर्फ़ कब्ज़ा करने के बजाय सार्थक अनुभव चाहने लगते हैं, तो बाज़ार का नज़रिया भी बदल जाता है।

भविष्य का टूरिज़्म जगहों को इस्तेमाल करने के बारे में नहीं, बल्कि उनमें अर्थ खोजने के बारे में होगा। प्रकृति दोहन के लिए सिर्फ़ एक बैकग्राउंड नहीं रहेगी, बल्कि इंसानी भलाई के निर्माण में एक साथी बन जाएगी। असली भविष्य दुनिया को तब तक घूमने के बारे में नहीं है जब तक हम उसे बर्बाद न कर दें, बल्कि उसे इस तरह जानने के बारे में है कि वह हमारे बाद आने वालों के लिए भी ज़िंदा रहे। लोगों के आने-जाने पर नियंत्रण से पर्यावरण को होने वाला नुकसान कम होता है, विज़िटर का अनुभव बेहतर होता है और इकोसिस्टम की अखंडता बनी रहती है। स्थानीय समुदायों की सीधी भागीदारी क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को मज़बूत करती है, पारंपरिक ज्ञान को महत्व देती है और टूरिज़्म व पर्यावरण संरक्षण के बीच एक कड़ी बनाती है। जब पर्यटन प्रकृति की लय और समुदायों की गरिमा का सम्मान करने लगता है, तो वह खतरा नहीं रह जाता, बल्कि जागरूकता, संरक्षण और साझा भविष्य का ज़रिया बन जाता है।

30. सबके लिए खेल और मनोरंजन

कोई समाज पूरी तरह से विकसित मानवीय भविष्य की बात कैसे कर सकता है, अगर घूमने-फिरने, फुर्सत के समय और संस्कृति तक पहुँच अभी भी कुछ ही लोगों का विशेषाधिकार है? सम्मानजनक जीवन सिर्फ़ भौतिक रूप से जीवित रहने तक सीमित नहीं हो सकता: इसके लिए स्वास्थ्य, अभिव्यक्ति, मिल-जुलकर रहने और सामूहिक खुशी की भी ज़रूरत होती है। इन पहलुओं तक सबकी पहुँच सुनिश्चित करने का मतलब है यह समझना कि आम भलाई शरीर, मन और सामाजिक भावना, तीनों पर निर्भर करती है।

आज, खेल और मनोरंजन का रोज़मर्रा की ज़िंदगी पर गहरा असर है। खेल शारीरिक स्वास्थ्य, अनुशासन, सहयोग और बीमारियों से बचाव को मज़बूत करते हैं, जबकि मनोरंजन कल्पनाशीलता, मानसिक आराम और सांस्कृतिक जुड़ाव को बढ़ावा देते हैं। हालाँकि, इन चीज़ों तक पहुँच बहुत असमान है। कई इलाकों में सार्वजनिक कोर्ट, सांस्कृतिक केंद्र, खेल अभ्यास के लिए सुरक्षित जगहें और आसानी से पहुँचने लायक कार्यक्रम नहीं हैं। फुर्सत के समय और घूमने-फिरने के मौकों से वंचित रहने के कारण सामाजिक, शैक्षिक और यहाँ तक कि सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़ी असमानताएँ और गहरी हो जाती हैं।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या यह है कि इन चीज़ों तक पहुँच को एक 'कमोडिटी' (बाज़ार में बिकने वाली चीज़) बना दिया गया है। इसकी वजह यह है कि खेल और सांस्कृतिक सुविधाएँ मुख्य या निजी इलाकों में केंद्रित हैं, और इनमें शामिल होने के लिए उपभोग (खर्च करने) पर निर्भर रहना पड़ता है। कोर्ट, खेल केंद्र, सिनेमाघर, थिएटर, लाइब्रेरी और सांस्कृतिक मेल-जोल की जगहें ज़्यादा कीमती इलाकों में केंद्रित हैं, जिससे आबादी का एक बड़ा हिस्सा इन अनुभवों से शारीरिक और आर्थिक रूप से दूर रह जाता है। नतीजा यह होता है कि समाज का एक बड़ा हिस्सा, खासकर दूर-दराज़ के समुदायों के बच्चे, युवा और बुज़ुर्ग, इन जगहों से दूर रह जाते हैं। हम देखते हैं कि बैठे-बैठे रहने वाली जीवनशैली बढ़ रही है, लोग सामाजिक रूप से अलग-थलग पड़ रहे हैं, और मानवीय विकास व सामुदायिक जुड़ाव के मौके खत्म हो रहे हैं। इस मॉडल में, फुर्सत का समय एक अधिकार न रहकर एक उत्पाद बन जाता है। जब खेल और संस्कृति तक पहुँच आय पर निर्भर करती है, तो शरीर, मन और सामूहिक जीवन में भी यह असमानता दिखने लगती है। इसका दर्द युवाओं में सुरक्षित मिलन-स्थलों की कमी, छिपी हुई खेल प्रतिभाओं के सामने न आ पाने, कलात्मक रचनात्मकता के दब जाने और ऐसे समुदायों के रूप में दिखाई देता है जहाँ जश्न मनाने और अपनापन महसूस करने के पल नहीं होते।

जो समाज सामूहिक भलाई की परवाह करता है, वह समझता है कि खेल और मनोरंजन को विलासिता की चीज़ नहीं माना जा सकता: वे शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक स्वास्थ्य का एक ज़रूरी हिस्सा हैं। मोहल्लों, शहरों और समुदायों के जीवन में शामिल 'सामुदायिक खेल और मनोरंजन के यूनिवर्सल नेटवर्क' के निर्माण की वकालत की जाती है। इसका पहला आधार स्थानीय सार्वजनिक बुनियादी ढाँचा है। इसका मतलब है मल्टी-फ़ंक्शनल स्पोर्ट्स सेंटर, ओपन कोर्ट, वॉकिंग ट्रेल्स, सुविधाओं वाले चौक, आसानी से पहुँचने लायक पार्क, कम्युनिटी स्विमिंग पूल और सॉकर से लेकर जिम्नास्टिक्स, मार्शल आर्ट्स से लेकर डांस तक कई तरह के खेलों के लिए

जगहें बनाना। इसके अलावा, हमारे पास एक शानदार कल्चरल इंफ्रास्ट्रक्चर भी होना चाहिए: जैसे कि एक्टिव कम्युनिटी लाइब्रेरी, लोकप्रिय सिनेमाघर, आस-पास के थिएटर, म्यूज़िक हॉल, एजुकेशनल गेम सेंटर और ऐसे कल्चरल प्रोग्राम जो सबसे दूर-दराज़ के इलाकों तक पहुँच सकें। तीसरा पहलू है मुफ़्त और रेगुलर प्रोग्रामिंग। सिर्फ़ जगहें बनाना काफ़ी नहीं है, उनमें जान डालना भी ज़रूरी है। सभी उम्र के लोगों के लिए एक्टिविटीज़ का एक रेगुलर कैलेंडर बनाने का सुझाव दिया गया है: जैसे वर्कशॉप, फ़ेस्टिवल, चैंपियनशिप, फ़िल्म स्क्रीनिंग, शाम की महफ़िलें, लोकल परफ़ॉर्मेंस, बच्चों की एक्टिविटीज़ और बुजुर्गों के लिए प्रोग्राम।

सबसे पहले, हमें उन इलाकों की पहचान करनी होगी जहाँ आराम और खेलों की सुविधाओं की सबसे ज़्यादा कमी है। फिर, हमें बाहरी इलाकों और ऐसे क्षेत्रों में कम्युनिटी सेंटर बनाने चाहिए जहाँ ऐतिहासिक रूप से सुविधाओं की कमी रही है। तीसरा चरण है लोकल प्रोफ़ेशनल्स का एक नेटवर्क बनाना, जिसमें फ़िज़िकल एजुकेशन टीचर, आर्टिस्ट, म्यूज़िशियन, एथलीट, कल्चरल मीडिएटर और कम्युनिटी एजुकेटर शामिल हों। यह बात बहुत ज़रूरी है: नया मॉडल न सिर्फ़ सुविधाओं तक पहुँच देता है, बल्कि काम के मौके, पहचान और अपने इलाके से जुड़ाव की भावना भी पैदा करता है।

पेड एंटरटेनमेंट (पैसे देकर मनोरंजन), खाली समय को कमर्शियल चीज़ बनाने और बड़ी सांस्कृतिक व खेल सुविधाओं के एक ही जगह पर केंद्रित होने से जुड़े निजी हित, सबके लिए पहुँच बढ़ाने का विरोध करेंगे, खासकर तब जब इससे खास लोगों तक सीमित रहने से होने वाला मुनाफ़ा कम हो। इसी तरह, सिर्फ़ आर्थिक उत्पादकता पर केंद्रित शहरी मॉडल खाली समय को एक मामूली चीज़ मानते हैं, न कि इंसानी ज़िंदगी और सामाजिक मेलजोल का ज़रूरी हिस्सा। यह विरोध शहरी जगहों के मैनेजमेंट में भी दिखता है, जब चौराहों, ब्लॉक, सांस्कृतिक केंद्रों और लोगों के मिलने-जुलने की जगहों को नज़रअंदाज़ किया जाता है। शहर यह संदेश देने लगता है कि नागरिक का अस्तित्व सिर्फ़ उत्पादन और लेन-देन के लिए है, न कि पूरी तरह से जीने के लिए। मिलने-जुलने की जगहों की कमी से अकेलापन, सामाजिक बंटवारा और सामूहिक थकान बढ़ती है।

इस विरोध को लगातार सरकारी निवेश, कम्युनिटी पार्टनरशिप और जगहों के मैनेजमेंट में मज़बूत सामाजिक भागीदारी के ज़रिए दूर किया जाना चाहिए। हमें खाली समय, खेल और संस्कृति को शहरी नीति के ज़रूरी हिस्सों के तौर पर पहचानना शुरू करना होगा, जिनका अपना बजट, क्षेत्रीय लक्ष्य और केंद्रीय व बाहरी इलाकों के बीच संतुलित बंटवारा हो। दूसरा चरण कम्युनिटी इंफ्रास्ट्रक्चर के लगातार निर्माण से होना चाहिए, जैसे खुले कोर्ट, आस-पड़ोस के

सांस्कृतिक केंद्र, लिविंग लाइब्रेरी, आसानी से पहुँच वाले पार्क, और संगीत, थिएटर व मेलजोल के लिए जगहें। हालाँकि, सबसे ज़रूरी चीज़ है सामूहिक मैनेजमेंट। जब कम्युनिटी इन जगहों को बनाने, उनकी देखभाल करने और वहाँ कार्यक्रम आयोजित करने में मदद करती है, तो वह जगह सिर्फ़ सार्वजनिक नहीं रह जाती, बल्कि सच में सामूहिक बन जाती है। सामाजिक भागीदारी उस जगह को जीवंत बनाती है, और इस्तेमाल करने वाले लोग उसे अपना मानते हैं और उसकी सुरक्षा करते हैं।

खेल शरीर को मज़बूत बनाता है, संस्कृति आत्मा को मज़बूत बनाती है, और दोनों मिलकर कम्युनिटी को मज़बूत बनाते हैं। एक न्यायपूर्ण समाज न सिर्फ़ ज़िंदा रहने का मौका देता है, बल्कि पूरी ज़िंदगी जीने का भी। खेल तक पहुँच भविष्य में स्वास्थ्य पर होने वाले खर्च को कम करती है, सेहत के संकेतकों को बेहतर बनाती है, और युवाओं में अनुशासन व मिल-जुलकर रहने की भावना को मज़बूत करती है। आसानी से उपलब्ध मनोरंजन सांस्कृतिक दायरे को बढ़ाता है, रचनात्मकता को बढ़ावा देता है और सामाजिक अलगाव को कम करता है। जब ये जगहें अलग-अलग इलाकों में फैली होती हैं, तो शहर ज़्यादा जीवंत, सुरक्षित और एकीकृत हो जाता है, जिससे कम्युनिटी की सामूहिक पहचान मज़बूत होती है। जो समाज खेल और मनोरंजन को सबके लिए सुलभ बनाता है, वह सिर्फ़ खाली समय ही नहीं देता: वह सम्मान, अपनापन और मानवीय दृष्टिकोण भी देता है। इन अनुभवों को सबके लिए सुलभ बनाना कोई विलासिता नहीं है, बल्कि एक ज़्यादा न्यायपूर्ण और पूरी तरह से जीवंत भविष्य के लिए ज़रूरी शर्त है।

31. सबके भले के लिए मार्केटिंग

ऐसा समाज कैसा होगा जहाँ मास कम्युनिकेशन (बड़े पैमाने पर संचार) ज़रूरत से ज़्यादा चीज़ों को बढ़ावा न दे, बल्कि ऐसे विकल्पों को चुनने में मदद करे जो सामूहिक जीवन को बेहतर बनाएँ? इंसानी भविष्य को बनाने में यह एक अहम मोड़ है, क्योंकि कोई समाज अपनी सार्वजनिक भाषा में जिन चीज़ों को बढ़ावा देता है, वे ही लोगों की इच्छाओं, आदतों और प्राथमिकताओं को आकार देती हैं। अगर कम्युनिकेशन बड़े पैमाने पर व्यवहार को प्रभावित करता है, तो इसका इस्तेमाल सामाजिक सेहत, पर्यावरण के संतुलन और समुदाय को मज़बूत करने के लिए भी किया जा सकता है।

आज के समय में, मार्केटिंग अर्थव्यवस्था और रोज़मर्रा की ज़िंदगी में अहम भूमिका निभाती है। यह उपभोग के ट्रेंड, जीवनशैली, सामाजिक आकांक्षाओं और यहाँ तक कि पहचान के तरीकों को भी तय करती है। इसका असर बहुत गहरा होता है, खासकर युवाओं पर, क्योंकि लगातार विज्ञापन देखने से सफलता, खुशी और अपनापन महसूस करने के बारे में उनकी सोच बनती है। कम्युनिकेशन की यह ताकत ज़रूरत से ज़्यादा उपभोग के चक्र को मज़बूत भी कर सकती है और सेहतमंद, टिकाऊ और सामाजिक रूप से ज़िम्मेदार तौर-तरीकों को बढ़ावा भी दे सकती है।

मौजूदा मॉडल की समस्या यह है कि इसमें लगातार चीज़ें खरीदने और तुरंत संतुष्टि पाने की इच्छा जगाने वाले संदेशों की प्रधानता है। इसकी वजह ऐसी कम्युनिकेशन रणनीतियाँ हैं जो व्यक्तिगत मूल्य को उपभोग, दिखावट, रुतबे और भौतिक चीज़ों से जोड़ती हैं। सोच-समझकर विकल्प चुनने में मदद करने के बजाय, यह सिस्टम बनावटी इच्छाओं को बढ़ाता है और यह सोच पैदा करता है कि खुशी, पहचान और अपनापन लगातार खरीदारी करने पर निर्भर करते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि सामाजिक चिंता, कर्ज़, बर्बादी और प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता है। आखिर में, एक ऐसी संस्कृति बनती है जिसमें इच्छाएँ तो लगातार बढ़ती रहती हैं, लेकिन असली संतुष्टि दूर होती जाती है। इस मॉडल में, मार्केटिंग सबके भले के बजाय बनावटी ज़रूरतें पैदा करती है। हम देखते हैं कि परिवार ऐसे मानकों के दबाव में हैं जिन्हें पाना मुश्किल है, युवा अपनी आत्म-सम्मान की भावना को विज्ञापनों में दिखाई गई छवि से जोड़ते हैं, लोग भरपाई के लिए खरीदारी करने के चक्र में फँसे हुए हैं, और समुदाय सादे और सेहतमंद जीवन जीने के तरीकों से दूर होते जा रहे हैं। यह सिर्फ़ अर्थव्यवस्था की बात नहीं है, बल्कि मानसिक सेहत, भावनात्मक संतुलन और इंसानी रिश्तों की गुणवत्ता की भी बात है।

लेकिन यहाँ एक बड़ी संभावना भी है: कम्युनिकेशन इच्छाओं को हेरफेर करने का ज़रिया बनने के बजाय सकारात्मक सामाजिक बदलाव की ताकत बन सकता है। 'सबके भले के लिए मार्केटिंग सिस्टम' बनाने की वकालत की जाती है, जो ऐसे सार्वजनिक, सामुदायिक और निजी अभियानों पर आधारित हो जो सेहत, मिल-जुलकर रहने, शिक्षा, टिकाऊपन और भावनात्मक संतुलन को बढ़ावा दें। इसका पहला पहलू सेहतमंद जीवनशैली को बढ़ावा देना है। व्यावहारिक रूप से, इसका मतलब है ऐसे कम्युनिकेशन को बढ़ावा देना जो सोच-समझकर खाने, शारीरिक गतिविधि, पूरी नींद, मानसिक भलाई और बीमारियों से बचाव को महत्व दे। इसके बाद, इंसानी रिश्तों को मज़बूत करना ज़रूरी है। कैंपेन और कंटेंट को परिवार के साथ मिल-जुलकर रहने, दोस्ती, समुदाय में एकता, अलग-अलग पीढ़ियों के बीच सम्मान और सामाजिक भागीदारी को

बढ़ावा देना चाहिए। तीसरा पहलू है ज़िम्मेदारी से चीज़ों का इस्तेमाल करने के लिए शिक्षा। लगातार नई चीज़ें खरीदने के बजाय, बातचीत में सामान की मज़बूती, मरम्मत, दोबारा इस्तेमाल, टिकाऊ विकल्प और पर्यावरण के प्रति जागरूकता को महत्व दिया जाना चाहिए। चौथा पहलू है प्रकृति और इंसानी समय से फिर से जुड़ना। हरियाली वाली जगहों के बीच रहना, टिकाऊ तरीके से आना-जाना, समुदाय के साथ फुर्सत के पल बिताना और भागदौड़ भरी ज़िंदगी की रफ़्तार को कम करना–ये सब सफलता और भलाई के सही तरीके माने जाते हैं।

अगला कदम है पब्लिक और कमर्शियल कम्युनिकेशन के लिए नैतिक नियम बनाना, ताकि डर, कमी के एहसास या उपभोक्तावादी मजबूरी का फ़ायदा उठाने वाले हेर-फेर वाले तरीकों को रोका जा सके। फिर हमें सामाजिक रूप से फ़ायदेमंद कैंपेन के लिए प्रोग्राम बनाने चाहिए, और ऐसी कंपनियों और संस्थाओं को पब्लिक सर्टिफ़िकेशन देना चाहिए जो सबकी भलाई को ध्यान में रखकर बातचीत करती हैं। तीसरा कदम है इस नए नज़रिए को मीडिया साक्षरता में शामिल करना, ताकि ऐसे नागरिक तैयार हो सकें जो उपभोक्ता संदेशों को सही ढंग से समझ और परख सकें।

मौजूदा सिस्टम बदलाव का कड़ा विरोध करता है। आर्थिक क्षेत्र असीमित इच्छाओं, हमेशा कमी पैदा करने और तेज़ी से खपत बढ़ाने की सोच पर बहुत ज़्यादा निर्भर हैं। नैतिक नियमों के ख़िलाफ़ दबाव है, कमर्शियल आज़ादी का बिना रोक-टोक बचाव किया जाता है, और ऐसी बातें फैलाई जाती हैं जो खपत को बढ़ावा देने को ही आर्थिक तरक्की मान लेती हैं। मार्केटिंग कम्युनिकेशन सिर्फ़ उत्पादों के बारे में जानकारी नहीं देता, बल्कि इच्छाओं को गढ़ने का काम करता है। यह सिस्टम असुरक्षा, सामाजिक तुलना और कमतर होने की भावना को खपत बढ़ाने के स्थायी ज़रिया में बदलना सीख जाता है। यह विरोध सिर्फ़ कॉर्पोरेट स्तर पर ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्तर पर भी होता है; यह उन आदतों, प्रतीकों और उम्मीदों पर टिका होता है जिन्हें रोज़मर्रा की ज़िंदगी में फैलने वाले संदेश लगातार मज़बूत करते हैं।

इस विरोध को नैतिक नियमों, सामाजिक दबाव, आलोचनात्मक शिक्षा और इंसानी व पर्यावरणीय ज़िम्मेदारी निभाने वाले ब्रांड और संस्थाओं को सार्वजनिक मान्यता देकर दूर किया जाना चाहिए। पहला कदम ऐसे स्पष्ट नियम बनाना है जो आक्रामक विज्ञापन, भावनात्मक हेरफेर और कमज़ोर वर्ग (खासकर बच्चों और किशोरों) को लुभाने वाले तरीकों पर रोक लगाएं। जब कम्युनिकेशन अपने सामाजिक असर के लिए जवाबदेह बनता है, तो मनोवैज्ञानिक शोषण पर आधारित मॉडलों के लिए जगह कम हो जाती है। इसके बाद, प्रतीकात्मक माहौल में धीरे-धीरे बदलाव आना चाहिए। कम्युनिकेशन की ज़िम्मेदारी के लिए सार्वजनिक पहचान, स्वास्थ्य, स्थिरता

और मिल-जुलकर रहने के अभियानों के लिए प्रोत्साहन, स्कूलों में मीडिया साक्षरता और अच्छे कामों के लिए संस्थागत पुरस्कार जैसे छोटे-छोटे कदम, इच्छाओं को थोपने के बजाय सबकी भलाई की ओर बढ़ने में मदद करते हैं।

यहीं पर उम्मीद को सामूहिक आवाज़ मिलती है। मार्केटिंग सिर्फ़ उत्पाद बेचना बंद कर देती है और ज़्यादा स्वस्थ, संतुलित और मानवीय जीवन शैली को बढ़ावा देने लगती है। जब संदेश ज़रूरत को बढ़ाने के बजाय संतुष्टि का भाव जगाने लगते हैं, तो समाज अलग तरह से सांस लेने लगता है। भविष्य सिर्फ़ कानूनों या ढांचों से नहीं, बल्कि उन बातों से भी बनेगा जिन्हें हम रोज़ दोहराते हैं। कम्युनिकेशन की लोगों को प्रभावित करने की शक्ति को सही दिशा में मोड़कर, ज़्यादा चीज़ों की चाहत वाली संस्कृति कम होती है, सामूहिक मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है और पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़ती है। युवा लोगों को ज़्यादा रचनात्मक उदाहरण मिलने लगते हैं, समुदाय ज़्यादा सक्रिय हो जाते हैं और रोज़मर्रा के फैसलों में लंबे समय तक चलने वाले मूल्यों की झलक मिलने लगती है। जो समाज अच्छी बातें करना सीख जाता है, वह अच्छाई को जीने के लिए ज़रूरी माहौल भी बनाता है।

32. आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और इंसानी इरादे

क्या होता है जब टेक्नोलॉजी न सिर्फ़ कमांड को, बल्कि इंसानी पसंद के पीछे के इरादों को भी समझने लगती है? यह सवाल भविष्य के बारे में एक अहम सोच पैदा करता है: बात सिर्फ़ ज़्यादा बेहतर मशीनों की नहीं है, बल्कि ऐसे सिस्टम की है जो व्यवहार के पैटर्न, सामूहिक ज़रूरतों और सामाजिक लक्ष्यों को समझ सकें। मुख्य सवाल तकनीकी तरक्की का नहीं है, बल्कि यह है कि इस तरक्की का इस्तेमाल किसके लिए और किस मकसद से किया जाएगा।

आज, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस शिक्षा, स्वास्थ्य, संचार, परिवहन, फाइनेंस और पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन जैसे क्षेत्रों में रोज़मर्रा के फैसलों पर असर डाल रही है। एल्गोरिदम शहरी गतिविधियों को व्यवस्थित करने, मेडिकल जोखिमों की पहचान करने, सीखने की प्रक्रिया को पर्सनलाइज़ करने और प्रोडक्शन चेन को बेहतर बनाने में मदद करते हैं। इस टेक्नोलॉजी में पसंद का अंदाज़ा लगाने, व्यवहार का अनुमान लगाने और बड़े पैमाने पर इंसानी फैसलों में मदद करने की क्षमता बढ़ रही है, जिससे समाज के संगठन का तरीका सीधे तौर पर तय हो रहा है।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या तकनीकी क्षमता और नैतिक ज़िम्मेदारी के बीच के अंतर में है। इसकी वजह ऐसे सिस्टम का इस्तेमाल है जो दक्षता, मुनाफ़े या नियंत्रण से चलते हैं, और जिनमें मानदंडों, लक्ष्यों और सामाजिक नतीजों के बारे में पर्याप्त पारदर्शिता नहीं होती। सामूहिक हित को स्पष्ट रूप से पूरा करने के बजाय, टेक्नोलॉजी को इस तरह डिज़ाइन किया जाता है कि वह यूज़र को जोड़े रखे, उपभोक्ता व्यवहार का अनुमान लगाए, संवेदनशील फैसलों को ऑटोमेट करे और जानकारी को कुछ ही सत्ता केंद्रों में केंद्रित करे। इसका नतीजा पूर्वाग्रहों को मज़बूत करना, पसंद में हेरफेर करना, अत्यधिक निगरानी और सूचना की शक्ति का केंद्रीकरण है। इसका अंतिम असर इंसानी स्वायत्तता का नुकसान और ऐसे ऑटोमेटेड फैसलों का जोखिम है जो गरिमा, विविधता और सामाजिक भलाई को नहीं दर्शाते। इंटेलिजेंस, जब सही इंसानी इरादे से अलग हो जाती है, तो सामूहिक जीवन के बजाय सत्ता संरचना की ज़्यादा सेवा कर सकती है। जोखिम टेक्नोलॉजी में नहीं, बल्कि उस मकसद में है जो उसे निर्देशित करता है। अपारदर्शी सिस्टम ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों को दोहरा सकते हैं, भेदभाव को बढ़ा सकते हैं और लोगों को केवल सांख्यिकीय डेटा में बदल सकते हैं।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को केंद्रीकरण का साधन बनने के बजाय सामाजिक न्याय को बढ़ाने, संकटों को रोकने और इंसानी विकास को बढ़ावा देने वाली शक्ति बनने की ज़रूरत है। इंसानी मकसद के साथ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के निर्माण की वकालत की जाती है, जिसे पारदर्शिता, ऑडिट की क्षमता, स्पष्टीकरण की क्षमता और सामाजिक तालमेल के सिद्धांतों पर तैयार किया जाए। पहला कदम एल्गोरिदम की पारदर्शिता है, जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, गतिशीलता, संसाधनों के वितरण और शहरी नियोजन जैसे सामाजिक प्रभाव वाले क्षेत्रों में इस्तेमाल होने वाले सिस्टम ऐसे मानदंडों के साथ काम करें जो सार्वजनिक और तकनीकी ऑडिट के लिए खुले हों। दूसरा कदम कई लोगों की निगरानी है। कोई भी ऑटोमेटेड सिस्टम उन फैसलों में अंतिम अधिकार के तौर पर काम न करे जो सीधे तौर पर लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं। विशेषज्ञों, समुदाय के प्रतिनिधियों, कानून के जानकारों, शिक्षाविदों और आम नागरिकों से बनी मल्टी-डिसिप्लिनरी काउंसिल को इन टेक्नोलॉजी के इस्तेमाल पर लगातार नज़र रखनी चाहिए। तीसरा कदम समाज की असल ज़रूरतों के साथ तालमेल बिठाना है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस संसाधनों के सही बंटवारे, स्मार्ट शहरी योजना, हर व्यक्ति के हिसाब से शिक्षा, सामाजिक संकटों की जल्द पहचान, पर्यावरण की निगरानी और लॉजिस्टिक्स या सैनिटेशन सिस्टम के फेल होने से बचाने में मदद कर सकता है। यहाँ, टेक्नोलॉजी सिर्फ़ प्रतिक्रिया देने से आगे बढ़कर भविष्य के लिए सामूहिक प्रोजेक्ट्स पर मिलकर काम करने लगती है। सबसे पहले, हमें एल्गोरिदम-आधारित गवर्नेंस के लिए

सार्वजनिक ढांचे बनाने होंगे, जिनमें बड़े असर वाले सिस्टम के लिए ज़रूरी नैतिक मानक शामिल हों। इसके बाद, सामाजिक भलाई पर केंद्रित सार्वजनिक और सहकारी AI प्लेटफ़ॉर्म का विकास करना होगा। तीसरा चरण इन टूल्स के समझदारी भरे और सोच-समझकर इस्तेमाल के लिए नागरिकों और पेशेवरों को ट्रेनिंग देना है।

यह साफ़ है कि मौजूदा सिस्टम बदलाव का कड़ा विरोध करता है। टेक्नोलॉजी की ताकत के बड़े केंद्र, बंद कॉर्पोरेट ढांचे और एल्गोरिदम की अस्पष्टता पर आधारित मॉडल–ये सभी क्राइटेरिया (मानदंडों) को खोलने, जानकारी पर नियंत्रण को सीमित करने और डिजिटल फ़ैसले लेने की ताकत के बंटवारे का विरोध करते हैं। यह विरोध मॉडलों के बारे में गोपनीयता, कंप्यूटिंग इंफ्रास्ट्रक्चर के केंद्रीकरण, रेगुलेटरी कैप्चर (नियामक संस्थाओं पर नियंत्रण) और ऐसी बातों के ज़रिए दिखता है जो टेक्नोलॉजी को एक निष्पक्ष, स्वतंत्र क्षेत्र के तौर पर पेश करती हैं जिस पर लोकतांत्रिक नियंत्रण नहीं हो सकता। अस्पष्टता सिर्फ़ एक तकनीकी विशेषता नहीं है, बल्कि ताकत का एक ज़रिया भी है। जो कोई भी रिकमेंडेशन, फ़िल्टरिंग, प्राथमिकता तय करने और डेटा एनालिसिस के क्राइटेरिया को कंट्रोल करता है, वह लोगों के व्यवहार, मौकों, जानकारी तक पहुँच और आखिरकार सामूहिक फ़ैसलों को प्रभावित करता है। इसलिए, सिस्टम का यह विरोध सिर्फ़ आर्थिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि ज्ञान के ढांचे (नॉलेज आर्किटेक्चर) के क्षेत्र में भी होता है।

इस विरोध को लोकतांत्रिक रेगुलेशन, ओपन साइंस, पब्लिक डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर और लगातार सामाजिक भागीदारी के ज़रिए दूर किया जाना चाहिए। सबसे पहले, हमें शिक्षा, स्वास्थ्य, जानकारी, काम, क्रेडिट और पब्लिक मैनेजमेंट जैसे ज़्यादा सामाजिक असर वाले क्षेत्रों में एल्गोरिदम के क्राइटेरिया के बारे में प्रोग्रेसिव पारदर्शिता की मांग करनी चाहिए। जब समाज का बड़ा हिस्सा यह समझता है कि ऑटोमेटेड फ़ैसले कैसे लिए जाते हैं, तो सामूहिक निगरानी का एक सही आधार बनता है। इसके बाद, हमें स्वतंत्र ऑडिट सिस्टम के साथ एक पब्लिक डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर बनाना चाहिए। क्राइटेरिया को पब्लिश करना, बाहरी तौर पर बायस (पक्षपात) की जांच, स्थायी एथिक्स काउंसिल, पब्लिक डेटा सिस्टम और साफ़ जवाबदेही प्रोटोकॉल जैसे छोटे-छोटे कदम टेक्नोलॉजी की ताकत के निजी केंद्रीकरण को कम करते हैं।

तकनीकी दक्षता और लोकतांत्रिक नियंत्रण एक-दूसरे के विरोधी नहीं हैं। सबसे ज़रूरी बात यह है: आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस को इंसानी इरादे की जगह नहीं लेनी चाहिए, बल्कि उसे बेहतर बनाना चाहिए। सबसे अच्छा भविष्य वह नहीं है जिसमें मशीनें हमारे लिए फ़ैसले लें, बल्कि वह है जिसमें वे हमें बेहतर फ़ैसले लेने में मदद करें–ज़्यादा जानकारी, ज़्यादा न्याय और ज़्यादा

सामूहिक सोच के साथ। सही इंसानी मूल्यों से निर्देशित टेक्नोलॉजी, ज़्यादा निष्पक्ष शहर, ज़्यादा कुशल सिस्टम और ज़्यादा सम्मानजनक जीवन बनाने में मददगार बन सकती है। पारदर्शिता और सामाजिक नियंत्रण के साथ काम करने से लोगों का भरोसा बढ़ता है और इंसानी फ़ैसलों की आज़ादी बनी रहती है। असली तरक्की सिर्फ़ ज़्यादा ताकतवर मशीनों में नहीं, बल्कि उन्हें सही दिशा देने वाले ज़्यादा समझदार समाजों में है।

33. नया इंटरनेट

अगर जानकारी, बातचीत और इंसानी संगठन के लिए मुख्य जगह को ग्लोबल स्तर पर निजी हितों को पूरा करने के लिए बनाया जाता रहेगा, तो हम सच में एक न्यायपूर्ण समाज कैसे बना सकते हैं? इंटरनेट सिर्फ़ एक टूल नहीं है: यह वह जगह है जहाँ फ़ैसले प्रभावित होते हैं, व्यवहार बनते हैं और हकीकतें गढ़ी जाती हैं। इसलिए, इंसानी भविष्य के बारे में सोचने के लिए उस डिजिटल माहौल पर गहराई से दोबारा सोचने की ज़रूरत है जिसमें वह भविष्य जिया जाएगा।

आज, इंटरनेट का मुख्य मॉडल डेटा निकालने और उससे पैसा कमाने पर आधारित है। अरबों लोगों की गतिविधियाँ, उनकी खोज, बातचीत, पसंद और दिनचर्या को आर्थिक मूल्य में बदल दिया जाता है जो कुछ ही संस्थाओं के हाथों में केंद्रित होता है। इसका असर बहुत गहरा है: ऐसे प्लेटफ़ॉर्म जो ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान खींचने के लिए बनाए गए हैं, ऐसे एल्गोरिदम जो जुड़ाव बढ़ाने पर केंद्रित हैं, और ऐसे सिस्टम जो व्यक्तिगत और सामूहिक भलाई के बजाय तुरंत मिलने वाले उत्तेजक अनुभवों को प्राथमिकता देते हैं। इंटरनेट कोई तटस्थ माध्यम नहीं है और यह आज की ज़िंदगी की मुख्य संगठनात्मक ताकतों में से एक बन गया है।

मौजूदा मॉडल के साथ समस्या यह है कि एक ऐसी जगह पर निजी कब्ज़ा हो गया है जो असल में इंसानियत के लिए एक ज़रूरी बुनियादी ढाँचा बन गई है। इसकी वजह है तकनीकी केंद्रीकरण, डेटा पर आधारित मुनाफ़े की सोच और असरदार सार्वजनिक शासन का न होना। नतीजतन, हम लगातार निगरानी, व्यवहार में हेरफेर, चरम सामग्री का प्रसार और ऐसे इस्तेमाल के पैटर्न को बढ़ावा देते हुए देखते हैं जो निर्भरता और सामाजिक बिखराव को बढ़ावा देते हैं। आखिर में, इसका असर व्यक्तिगत आज़ादी का नुकसान, सार्वजनिक बहस का विकृत होना और सामूहिक भरोसे का कमज़ोर होना है। इंटरनेट जोड़ता भी है और बिखेरता भी है। यह जानकारी देता है, लेकिन उलझाता भी है। यह करीब लाता है, लेकिन अलग-थलग भी करता है।

इंटरनेट ध्यान खींचने की जगह बनने के बजाय सहयोग, पारदर्शिता और इंसानी संगठन का एक ग्लोबल सिस्टम बन सकता है जो आम भलाई के लिए काम करे। सामाजिक मकसद वाले सार्वजनिक इंटरनेट के निर्माण की वकालत की जाती है, जिसे इंसानियत के साझा बुनियादी ढाँचे के तौर पर व्यवस्थित किया जाए, जिसमें मुख्य मूल्य मुनाफ़ा नहीं, बल्कि समाज में जीवन हो। पहला विचार सार्वजनिक हित के मामलों में पूरी पारदर्शिता का है। डिजिटल सिस्टम को सार्वजनिक प्रबंधन, संसाधनों के आवंटन, सामाजिक संकेतकों, उत्पादन, योजना और नीति के कार्यान्वयन से जुड़ी जानकारी तक स्पष्ट, रियल-टाइम और ऑडिट करने योग्य पहुँच की अनुमति देनी चाहिए। जानकारी अस्पष्ट नहीं रहती और सोच-समझकर भागीदारी का साधन बन जाती है। फिर, हमें संचार के इंजन के तौर पर व्यक्तिगत प्रचार और व्यावसायिक विज्ञापन की सोच को खत्म करना होगा। इसका मतलब है कि टारगेटेड विज्ञापनों, कॉम्पिटिटिव सेल्फ़-प्रमोशन और विज़िबिलिटी से पैसे कमाने वाले सिस्टम खत्म हो जाएंगे। तब, डिजिटल स्पेस ध्यान खींचने की होड़ का मैदान नहीं रहेगा, बल्कि ज्ञान के आदान-प्रदान, सामूहिक संगठन और सामाजिक निर्माण का माहौल बन जाएगा।

तीसरा विचार है आपस में जुड़े हुए स्वतंत्र समुदायों के बीच तालमेल, जो अनुभव, समाधान, सीख और तरक्की को साझा करने के लिए एक जीवंत नेटवर्क बनाते हैं। एक इलाके में जो कुछ विकसित होता है, उसे दूसरे लोग समझ सकते हैं, अपना सकते हैं और उसमें सुधार कर सकते हैं, जिससे सामूहिक विकास का लगातार प्रवाह बना रहता है। फिर, हमें इस टेक्नोलॉजी को इंसानों की असल ज़रूरतों के हिसाब से ढालना होगा। ऐसे प्लेटफ़ॉर्म बनाने की ज़रूरत है जो शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक सहयोग, सामुदायिक संगठन और सामाजिक भागीदारी को बढ़ावा दें, और ध्यान भटकाने वाली चीज़ों की जगह सामूहिक मूल्य बनाने वाले फ़ंक्शन लाएं।

इसे लागू करने का पहला चरण एक ऐसे पब्लिक और ओपन डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर को बनाना है जो पारदर्शी, इंटरऑपरेबल और ऑडिट-योग्य प्रोटोकॉल पर आधारित हो और जिसका मैनेजमेंट कई लोगों या ग्रुप्स द्वारा किया जाए। इसके बाद, हमें धीरे-धीरे ज़रूरी सेवाओं को इस नए माहौल में लाना होगा, जिसमें पब्लिक इन्फॉर्मेशन सिस्टम, डिजिटल शिक्षा, नागरिकों की भागीदारी और अलग-अलग समुदायों के बीच तालमेल शामिल है। तीसरा चरण इंटरनेट के समझदारी भरे इस्तेमाल के लिए लोगों को तैयार करना है, ताकि सहयोग, सच्चाई और भलाई पर आधारित डिजिटल संस्कृति को बढ़ावा मिल सके। पारदर्शिता से संस्थाओं पर भरोसा बढ़ता है और ध्यान खींचने की होड़ खत्म होने से चिंता और हेर-फेर कम होती है। समुदायों के बीच तालमेल से

समाधान तेज़ी से मिलते हैं और सबकी भलाई पर ध्यान देने से इंटरनेट इंसानी विकास का एक ज़रिया बन जाता है।

डेटा से पैसे कमाने, विज्ञापन और जानकारी पर कंट्रोल करने वाले बड़े आर्थिक ढांचे ऐसे किसी भी मॉडल का विरोध करेंगे जो उनके असर और दौलत के जमावड़े को कम करता हो। इस विरोध का सामना आपसी तालमेल वाले इंटरनेशनल नियमों, मज़बूत पब्लिक विकल्पों को बनाने और मौजूदा मॉडल के असर के बारे में लोगों में जागरूकता बढ़ाकर किया जाना चाहिए। यह बदलाव तुरंत नहीं होगा, लेकिन यह ज़रूर होगा क्योंकि समाज यह समझ रहा है कि डिजिटल दुनिया इंसानी हितों के खिलाफ़ काम नहीं कर सकती। जब इंटरनेट शोषण करना बंद कर देगा और सेवा करना शुरू कर देगा, तो इसे एकता के सबसे बड़े ज़रिया में बदला जा सकेगा। भविष्य सिर्फ़ जुड़ा हुआ नहीं होगा। यह जागरूक भी होगा।

34. जब समाज कार्रवाई करने का फ़ैसला करता है

किसी सामूहिक प्रोजेक्ट को हकीकत में कैसे बदला जाए, जबकि मौजूदा मॉडल को सहारा देने वाले ढांचे ही उससे सबसे ज़्यादा फ़ायदा उठाते हैं? यह सवाल सिर्फ़ थ्योरी तक सीमित नहीं है: यह समझ और बदलाव के बीच के बदलाव के बिंदु को तय करता है। किसी भी ढांचागत बदलाव के लिए न सिर्फ़ नए विचारों की ज़रूरत होती है, बल्कि ताकतों में संतुलन बनाने में सक्षम समन्वित कार्यों की भी ज़रूरत होती है।

इस काम के दौरान यह साफ़ हो गया है कि आर्थिक, सूचनात्मक और संस्थागत शक्ति का जमावड़ा सिर्फ़ दक्षता से नहीं, बल्कि सिस्टम की जड़ता, रोज़मर्रा की निर्भरता और सामाजिक बंटवारे से बना रहता है। ज़्यादातर लोग अक्सर बिना जाने-समझे उन्हीं तंत्रों को बनाए रखते हैं जो उन्हें सीमित करते हैं। इस चक्र को तोड़ने के लिए हिंसा की नहीं, बल्कि बड़े पैमाने पर संगठित जागरूकता की ज़रूरत है। इस चरण का मकसद नष्ट करना नहीं, बल्कि शक्ति के प्रवाह को नई दिशा देना है। इसका मकसद शक्ति को केंद्रित करने वाले ढांचों के प्रभाव को कम करना और साथ ही आम भलाई की ओर उन्मुख विकल्पों को मज़बूत करना है। इसलिए, यह बदलाव समन्वित, प्रतीकात्मक और आर्थिक रूप से प्रासंगिक कार्यों के ज़रिए होता है। यहीं पर लाखों लोगों की सामूहिक शक्ति, जब वे मिलकर काम करते हैं, शक्ति और धन के ढांचों पर मापने योग्य और दृश्यमान प्रभाव पैदा करती है।

पहला कदम डेटा उद्योग को कुछ समय के लिए रोकना है। रणनीतिक रूप से डिस्कनेक्ट होने के एक वैश्विक दिन का प्रस्ताव है: 24 घंटों के लिए, मोबाइल डिवाइस ऑफ़लाइन काम करेंगे - बिना मोबाइल डेटा, बिना सक्रिय जियोलोकेशन और वाई-फ़ाई नेटवर्क के कम से कम इस्तेमाल के साथ - और ज़रूरत पड़ने पर ही सीमित कनेक्शन का इस्तेमाल करेंगे। मकसद अलग-थलग पड़ना नहीं, बल्कि उल्टी निर्भरता का ठोस प्रदर्शन करना है: जब डेटा का प्रवाह धीमा हो जाता है, तो यह पता चलता है कि सिस्टम सामूहिक गतिविधि पर कितना निर्भर है। यह साधारण सा काम, जब बड़े पैमाने पर किया जाता है, तो वह चीज़ दिखाई देने लगती है जो आम तौर पर दिखाई नहीं देती: अरबों लोगों द्वारा हर दिन पैदा की जाने वाली वैल्यू।

दूसरा कदम धन के जमावड़े वाले नेटवर्क को उजागर करना है। एक दिन साफ़ और आसानी से समझ में आने वाले शैक्षिक कंटेंट के बड़े पैमाने पर उत्पादन और प्रसार के लिए समर्पित होगा, जो अमूर्त आंकड़ों को ठोस हकीकत में बदल दे। आवास, भोजन, बुनियादी ढांचे या स्वास्थ्य के संदर्भ में किसी खास संपत्ति का क्या मतलब है? मामूली पुनर्वितरण से कितने लोगों की ज़िंदगी पर असर पड़ सकता है? मकसद खोखला गुस्सा पैदा करना नहीं, बल्कि सामूहिक स्पष्टता लाना है। जब असमानता का पैमाना समझ में आने लगता है, तो उदासीनता संभव नहीं रह जाती।

तीसरा कदम जलवायु संकट को उजागर करने का दिन है - सिस्टम की गति को धीमा करने और जवाबदेही को स्पष्ट रूप से दिखाने का एक समन्वित कार्यक्रम। पर्यावरण के विनाश के असर के बारे में सिर्फ़ बताने के बजाय, यह कदम उन गतिविधियों को एक साथ रोकने का प्रस्ताव देता है जो भारी उत्सर्जन और गैर-ज़रूरी खपत से सीधे जुड़ी हैं: जैसे कि निजी मोटर-गाड़ियों के इस्तेमाल में भारी कमी, गैर-ज़रूरी चीज़ों की खरीद को स्वेच्छा से रोकना, गैर-ज़रूरी क्षेत्रों का प्रतीकात्मक रूप से ठप पड़ना, और एक तय समय के लिए कम असर वाले तौर-तरीकों को सामूहिक रूप से अपनाना। साथ ही, पहले से तैयार किए गए सार्वजनिक डेटा को बड़े पैमाने पर फैलाया जाना चाहिए, जिसमें मुख्य रूप से उत्सर्जन करने वालों, सबसे ज़्यादा प्रदूषण फैलाने वाली प्रोडक्शन चेन और मौजूदा मॉडल को बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार निर्णय लेने वाले ढांचों की सही पहचान हो। इसका मकसद सिर्फ़ जागरूकता बढ़ाना नहीं है, बल्कि यह दिखाना है कि सिस्टम सामूहिक व्यवहार पर कैसे निर्भर है और मैनेजमेंट बॉडीज़ और बड़े आर्थिक एजेंटों की ज़िम्मेदारी को स्पष्ट रूप से उजागर करना है। जब लाखों लोग एक साथ उन गतिविधियों में अपनी भागीदारी कम करते हैं जो इस मॉडल को बनाए रखती हैं, तो एक साफ़ बदलाव आता है; बहस

अमूर्त बातों से हटकर ठोस हकीकत पर आ जाती है, जिससे निर्णय लेने वालों पर दबाव बनता है कि वे सिर्फ़ बातों का नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्गठन के ठोस संकेत का जवाब दें।

चौथा कदम 'सचेत बदलाव का दिन' है। इस प्रस्ताव में पहले से तय समय पर स्थानीय नेटवर्क, सहकारी समितियों और स्वतंत्र उत्पादकों के ज़रिए सामूहिक खपत पर ध्यान केंद्रित करना शामिल है, जिसके लिए इलाके के हिसाब से इन विकल्पों की पहले से मैपिंग की जाती है। समुदाय स्थानीय आपूर्तिकर्ताओं की सुलभ सूची बनाते हैं और सीधे खरीद के चैनल स्थापित करते हैं, जिससे बड़े ढांचों में मूल्य केंद्रित करने वाले बिचौलियों की भूमिका कम हो जाती है। साथ ही, सरल सामुदायिक प्लेटफ़ॉर्म पुनर्निर्देशित संसाधनों की मात्रा को रिकॉर्ड करते हैं और उन्हें सबके सामने लाते हैं, जिससे आर्थिक बदलाव का एक ठोस संकेतक बनता है। इसका असर न केवल स्थानीय क्षेत्र को मज़बूत करने पर पड़ता है, बल्कि बड़ी, केंद्रित चेन की आय में भी एक साथ कमी आती है, खासकर तब जब इस कार्रवाई को दोहराया और बड़े पैमाने पर किया जाता है। तर्क उलट जाता है: केंद्रीकृत ढांचों को अपने-आप बढ़ावा देने के बजाय, खपत इलाके को मज़बूत करने का एक सचेत निर्णय बन जाती है। जब यह आंदोलन बड़े पैमाने पर पहुँचता है, तो यह केवल प्रतीकात्मक नहीं रह जाता, बल्कि व्यावहारिक पुनर्वितरण के एक तंत्र के रूप में काम करने लगता है, जिससे यह साबित होता है कि आर्थिक शक्ति स्थिर नहीं है, बल्कि यह सामूहिक प्रवाह के साथ चलती है।

आखिरकार, इस किताब में दी गई बातों को संस्थागत स्तर पर लागू करने के लिए एक समन्वित वैश्विक कार्रवाई ज़रूरी हो जाती है, जो इस प्रस्ताव को लगातार राजनीतिक दबाव में बदल सके। इस कार्रवाई में रणनीतिक प्रचार-प्रसार का एक तालमेल वाला चक्र बनाना शामिल है, जिसमें मॉडल के व्यावहारिक हिस्सों–जैसे विकेंद्रीकृत प्रबंधन के साथ टैक्स का पुनर्वितरण, सार्वजनिक डिजिटल पारदर्शिता, स्थानीय उत्पादन नेटवर्क, ज्ञान तक सबकी पहुँच और सामुदायिक बुनियादी ढाँचा–को छोटे, स्पष्ट और आसानी से दोहराए जा सकने वाले कंटेंट में बदला जाए, साथ ही उन्हें लागू करने के ठोस उदाहरण भी दिए जाएँ। इन कंटेंट का प्रचार कई इलाकों में एक साथ किया जाना चाहिए, और साथ ही स्थानीय प्रतिनिधियों के प्रति नागरिकों को लामबंद किया जाना चाहिए: जैसे प्रस्तावों को समन्वित तरीके से सौंपना, सार्वजनिक परामर्शों में भाग लेना, सुनवाई में शामिल होना और परिषदों व संस्थानों के साथ समन्वय करना। इसका लक्ष्य एक व्यवस्थित माँग का लगातार और बढ़ता हुआ दायरा बनाना है, जिससे ऐसे प्रस्तावों को नज़रअंदाज़ करना राजनीतिक रूप से महँगा साबित हो। साथ ही, संगठित समूह संस्थागत प्रतिक्रियाओं पर

नज़र रखें, जिससे यह सार्वजनिक रूप से पता चल सके कि कौन बदलाव को आगे बढ़ा रहा है और कौन उसे रोक रहा है। यह सिर्फ़ जानकारी देने के बारे में नहीं है, बल्कि ज्ञान को वैध और लगातार बने रहने वाले दबाव में बदलने के बारे में है। इसी मोड़ पर बदलाव पक्का होता है: जब सामूहिक सोच समाज में फैल जाती है और औपचारिक निर्णय लेने वाले ढाँचों में स्थायी रूप से स्थापित हो जाती है।

यह उम्मीद की जा सकती है कि इन कार्यों का विरोध होगा। स्थापित ढाँचे सामूहिक आंदोलनों को कमज़ोर करने, बाँटने या उनकी वैधता पर सवाल उठाने की कोशिश करेंगे–चाहे नैरेटिव के ज़रिए हो या आर्थिक दबाव के ज़रिए। इस विरोध का जवाब सीधे टकराव में नहीं, बल्कि समन्वित दृढ़ता और सामाजिक जागरूकता के विस्तार में है। कोई भी व्यवस्था समाज की लगातार भागीदारी के बिना टिक नहीं सकती। जब यह भागीदारी नए सिरे से संगठित होती है, तो संतुलन बदल जाता है। इस चरण की उम्मीद किसी एक घटना में नहीं, बल्कि इन कार्यों को सोच-समझकर, प्रगतिशील और बढ़ते हुए तरीके से दोहराने में है। छोटे-छोटे कदम, जब बड़े पैमाने पर समन्वित होते हैं, तो संरचनात्मक ताकत बन जाते हैं। बदलाव इसी तरह होता है: अचानक टूटने से नहीं, बल्कि लगातार विस्थापन से। जो समाज अपनी ताकत को समझता है, वह दूसरों के नेतृत्व में चलना बंद कर देता है और खुद नेतृत्व करने लगता है। और ठीक यहीं पर भविष्य महज़ एक वादा न रहकर एक निर्माण बन जाता है।

पाठक के लिए — आखिरी शब्द

अगर इस किताब ने आपको बेचैन किया है, तो इसने अपना पहला मकसद पूरा कर लिया है: यह एहसास जगाना कि हम जिस दुनिया में रहते हैं, उसका ऐसा ही होना ज़रूरी नहीं है। कोई भी असली बदलाव सबसे पहले बड़े ढांचों में नहीं आता। यह रोज़मर्रा की ज़िंदगी में, उन लोगों के बीच शुरू होता है जो असमानता, भेदभाव और कुछ खास लोगों के विशेषाधिकारों को स्वाभाविक मानने से इनकार करते हैं। पहला कदम दुनिया को जीतना नहीं, बल्कि एक ऐसी छोटी सी जगह बनाना है जहाँ चीज़ें पहले से ही अलग हों। इसी तरह पहली आज़ाद कम्युनिटीज़ (समुदाय) बनती हैं: छोटे समूह, परिवार, पड़ोसी, साथी, संगठन–ऐसे लोग जो सिर्फ़ विचारों से नहीं, बल्कि काम,

कमिटमेंट और आपसी ज़िम्मेदारी से जुड़े होते हैं। कानून बनने से पहले, 'कॉमन गुड ऑर्डर' (सबके भले की व्यवस्था) को असल ज़िंदगी में अपनाना ज़रूरी है।

फिर, बदलाव को सिर्फ़ स्थानीय स्तर तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि संस्थाओं पर भी असर डालना चाहिए। अगर सिस्टम दूर का लगता है, तो उस जगह से शुरुआत करें जहाँ उसका चेहरा दिखता है: नगरपालिका। वहाँ नागरिक की बात सुनी जा सकती है, जहाँ राजनीति का सामना सड़कों, स्कूलों, हेल्थ सेंटरों और मोहल्लों की असल ज़िंदगी से होता है। कम्युनिटी काउंसिल, जन-सुनवाई, स्थानीय संगठन, सिटी काउंसिल और लोगों की भागीदारी वाले बजट सिस्टम, सिस्टम में नैतिक तरीके से शामिल होने के ज़रिया बनते हैं। सबके भले के लिए बनने वाले पहले कानून इसी आधार से निकलने चाहिए: छोटे, ठोस, दिखने वाले, जो लोगों की असल ज़िंदगी को बेहतर बना सकें और यह साबित कर सकें कि एक दूसरा मॉडल भी मुमकिन है।

जब बदलाव असल ज़िंदगी को बेहतर बनाता है, तो वह सिर्फ़ एक विचार नहीं रह जाता, बल्कि एक मिसाल बन जाता है। एक सेल दूसरे को प्रेरित करता है। एक मोहल्ला दूसरे को प्रेरित करता है। एक शहर दूसरे शहर के अनुभव को देखने लगता है। जो एक घर में शुरू हुआ, वह सड़क तक फैल जाता है। जो सड़क पर शुरू हुआ, वह मोहल्ले तक पहुँचता है, और मोहल्ले से शहर तक, और आखिर में पूरे इलाके और पूरे देश तक फैल जाता है। इस तरह बदलाव एक जन-आंदोलन बन जाता है। थोपे जाने से नहीं, बल्कि मिसाल की ताकत से, इस ठोस सबूत से कि न्याय, अपनापन और सम्मान को मिलकर बनाया जा सकता है। यह रास्ता आगे बढ़ता जाता है: घर, सड़क, मोहल्ला, शहर, इलाका, देश।

यह काम कोई भ्रम नहीं है, इसलिए इसकी अपनी सीमाएँ हैं। पहली बात, कुछ चीज़ों को लागू करना आसान है या वे सामाजिक सोच वाले कुछ देशों में पहले से ही हकीकत हैं। दूसरी चीज़ें, जो मध्यम अवधि में मुमकिन हैं, वे मज़बूत सामाजिक एकता से ही हकीकत बन सकती हैं। आखिरकार, कुछ बदलावों के लिए उन्हें गहराई से अपनाना और सांस्कृतिक रूप से ढलना ज़रूरी होता है; इसमें पीढ़ियाँ लग सकती हैं या हो सकता है कि वे कभी पूरी तरह से हकीकत न बन पाएं। इन बातों से इस बात पर ध्यान कम नहीं होता कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में आम भलाई को कैसे शामिल किया जाए, इसके व्यावहारिक उदाहरण दिए जाएं। हमारा मुख्य मकसद ऐसे कानून बनाना है जो आम भलाई से जुड़े अधिकारों की गारंटी दें और कुछ ही लोगों के हाथों में सत्ता और धन के जमावड़े को कम करें।

इस किताब का स्वरूप सामाजिक है, लेकिन यह समाजवाद का कोई आदर्शवादी सपना (यूटोपिया) नहीं है। इसमें दिए गए कई सुझाव कार्यक्षमता और सामाजिक संकेतकों, दोनों को बेहतर बना सकते हैं। यह किताब कुछ ऐसी बातों का विरोध नहीं करती जो शायद सीधे तौर पर लिखी न हों, लेकिन ध्यान से पढ़ने पर समझ आती हैं। पहली बात, यह किताब निजी संपत्ति का विरोध नहीं करती। हाँ, यह हमारे उत्पादन के संतुलन और प्रबंधन में बदलाव का सुझाव देती है; यह सत्ता और धन के अत्यधिक केंद्रीकरण को कम करने और लोकतंत्र में सामाजिक शक्ति को बढ़ाने की वकालत करती है। दूसरी बात, इस बात पर ध्यान देना ज़रूरी है कि कैसे अत्यधिक सार्वजनिक पारदर्शिता, सरकारी तानाशाही के हाथों में सामाजिक नियंत्रण का एक ज़रिया बन सकती है। यह किताब इस विचार का समर्थन नहीं करती कि प्रस्तावित मॉडल किसी तरह की सामाजिक या मज़दूर तानाशाही में बदल सकता है। इसके अलावा, यह किताब ऐसे सामाजिक ढांचे की उम्मीद नहीं करती जो लोगों को पूरी तरह एक जैसा बना दे: पिरामिड जैसे ढांचे को तो नकारा गया है, लेकिन मकसद एक ऐसा ढांचा बनाना है जिसमें सामाजिक वर्ग एक-दूसरे के करीब आएं।

आपने शायद गौर किया होगा कि पूरी किताब में सुरक्षा, पुलिस या सेना के मामलों का कोई ज़िक्र नहीं है। 'कॉमन गुड ऑर्डर' (सबके भले की व्यवस्था) शांतिवादी है। किसी भी समाज में अपराध तो होंगे ही, लेकिन हमें एक ऐसी सुरक्षा व्यवस्था की वकालत करनी चाहिए जो सार्वजनिक हो और जिसकी सामाजिक रूप से समीक्षा की जा सके, और जिसमें पेशेवरों को उनके सामाजिक कार्यों के लिए उचित सम्मान मिले। मौजूदा सुरक्षा व्यवस्था के साथ समस्या यह है कि सत्ता के केंद्रीकरण को चुनौती देने की किसी भी कोशिश के खिलाफ बार-बार बल का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा, मौजूदा हालात में हम देखते हैं कि पुलिस बल निजी हितों से प्रेरित होते हैं और सबसे गंभीर स्थितियों में, युद्ध कुछ खास लोगों के लिए खेल की तरह लड़े जाते हैं। एक ज़िम्मेदार समाज में रहने वाले हर नागरिक का यह अधिकार होना चाहिए कि वह एक आज़ाद और सुरक्षित दुनिया में रहे।

एक और अहम मुद्दा यह है कि मौजूदा व्यवस्था के राजनीतिक प्रतिनिधि इस किताब के विचारों को अपने फायदे के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। कोई भी सामाजिक सुधार अहम होता है, लेकिन सार्वजनिक कार्यों को लागू करने के लिए सीमाओं का सम्मान करने और सबके भले के प्रति नैतिक प्रतिबद्धता की समझ भी ज़रूरी है। अगर बिना आलोचनात्मक विश्लेषण के इस किताब का गलत मतलब निकाला गया, तो नतीजा खालीपन या खतरा हो सकता है। इसलिए, सच्ची

सामाजिक जीत हासिल करने के लिए हालात के हिसाब से इसकी सामग्री को संशोधित करना, अपडेट करना और गहराई से समझना ज़रूरी है। तभी कुछ खास लोगों के विशेषाधिकारों वाली दुनिया को एक ऐसी न्यायपूर्ण और सामाजिक रूप से सम्मानजनक दुनिया में बदलने की वास्तविक संभावना बनेगी जो सचमुच सबकी हो।